

अणुव्रत दृष्टि

[अणुव्रत और उनकी व्याख्या]

मुनि श्री नगराजजी

प्रकाशक :
अणुव्रती समिति
३, पोर्बूगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

प्रस्तुत पुस्तकके प्रकाशनका समस्त व्यय-भार मिनासर (बीकानेर)
निवासी श्रीमान् पन्नालालजी चम्पालालजी बैद, २, राजा उडमन
स्ट्रीट, कलकत्ताने वहन किया है; उनकी इस अनुकरणीय
उदारताके लिये साभार धन्यवाद ।

मूलचन्द सेठिया
संयोजक

सम्बत् २०१०, बैसाख कृष्ण अमावस्या

प्रथम संस्करण २००० प्रति]

[मूल्य १)

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
४०२, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-७

अणुव्रती-संघके प्रवर्त्तक आंचायवर श्री तुलसीके चरणोंमें—

समर्पण

सर्वस्व !

यद्यपि जीवनकी प्रत्येक दृष्टि आपके इङ्कितसे अनुप्राणित है और वह आपकी ही है, अणुव्रती-संघके आदि उपक्रमसे आज तक आपके निकटतम सम्पर्कमें रह कर जहाँ तक मैं आपकी एतद् विषयक दृष्टिको हृदयङ्गम कर सका उसे स्वभाषामें अभिव्यक्त करनेका प्रस्तुत आयास, 'अणुव्रत-दृष्टि' है।

महर्षे !

समस्याओंसे आक्रान्त आजके इस विषम युगमें अणुव्रत-व्यवस्था एक सहज समाधान है। संसार इसे अणुव्रत-दर्शन या अणुव्रतवाद न भी कहे, तो भी यह तो मानना ही होगा कि यह मानवताके धरातलको मर्यादित करनेवाली एक आर्ष-दृष्टि है।

युगालोक !

इस अकिंचन उपहार कर देनेके परिणाम-स्वरूप तो मैं अपने आपको कृतकृत्य मानकर आज किसी विशेष आनन्दका अनुभव नहीं कर रहा हूँ किन्तु जिस अणुव्रती-संघके विषयमें सोचना, लिखना, बोलना जीवनका एक ध्येय बन चुका है, उस ओर मैं दो 'डग' भर सका, यही मेरे हर्षका विषय है।

मुनि नगराज

लेखकीय

‘सहू सयाने एक मत’ वाली कहावत चरितार्थ हुई। परतंत्रताकी बेड़ियाँ टूटीं भारतीय जनताको मुक्त वातावरणमें स्वास लेनेका अवसर मिला। एक साथ अनेकों विचारकोंने, देशके कर्णधरोंने देशका सर्वप्रथम भावी कार्यक्रम चरित्र-निर्माण ही माना। इसीका तो परिणाम था कि महात्मा गांधीकी मृत्युके अनन्तर ही आचार्य विनोबा सर्वोदय-कार्यक्रम जनताके सामने रखते हैं। वे कहते हैं “सत्य और अहिंसापर एक ऐसा समाज बनानेकी कोशिश करना जिसमें जाति-पाँति न हो, जिसमें किसीको शोषण करनेका मौका न मिले, जिसमें व्यक्ति-व्यक्तिकी सर्वाङ्गीण विकास करनेका पूरा अवसर मिले।” (जानकारी पत्र सर्वोदय समाज)

लगभग उसी कालमें आचार्य श्री तुलसी अणुव्रती-संघका संस्थापन करते हैं, वे अपना उद्देश्य बतलाते हैं “जाति, वर्ण, देश और धर्मका भेदभाव न रखते हुए मानवमात्रको संयम पथकी ओर आकृष्ट करना।” “अहिंसाके प्रचार द्वारा विश्वमैत्री और विश्वशान्तिका प्रचार करना।”

उद्देश्य और कार्यक्रमकी तुलना दोनों प्रवृत्तियोंको एक ही मस्तिष्ककी सूक्ष्म मान लेनेको प्रेरित सी करती है। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने तो आचार्यवरसे अनुरोध किया था कि सर्वोदय और अणुव्रत विचार परस्पर बहुत मेल खानेवाले हैं, मैं चाहता हूँ दोनों प्रवृत्तियाँ पारस्परिक सहयोगसे चलाई जाय तो देशका अधिक कल्याण होगा।

इसके कुछ ही बाद व्यवहार-शुद्धि आन्दोलन जनताके सामने आ जाता है। अणुव्रत-आन्दोलन और व्यवहार शुद्धि आन्दोलनमें भी कितनी सजातीयता है, यह आप नीचेके एक उद्धरण व इस ‘अणुव्रत दृष्टि’ के अवलोकनसे जानें। व्यवहार-शुद्धि आन्दोलनका प्रतिज्ञापत्र यह है :

“मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) व्यापारीके नाते—मैं

(क) मालकी संग्रहखोरी नहीं करूँगा, जिससे कि बाजारमें उसकी कृत्रिम कमी पैदा हो जाय।

(ख) बाजारमें कृत्रिम माँग बढ़ानेके कारण बेजा मुनाफा करनेके लिए अपने मालके भाव नहीं बढ़ाऊँगा।

- (ग) किसीके अज्ञान या जरूरतका लाभ उठानेके लिए ज्यादा कीमत नहीं मांगूंगा या तौल-नापमें कसर नहीं करूंगा ।
- (घ) भविष्यमें आकस्मिक कारणोंसे भाव बढ़ जायेंगे, इस आशयसे मैं चीजें बेचनेसे इन्कार नहीं करूंगा । पर अगर कोई अनुचित लाभ उठानेकी दृष्टिसे मेरा माल खरीदना चाहेंगे तो मैं उन्हें माल नहीं दूंगा । इस दशामें मेरा द्वार खरीददारोंको फुटकर विक्रीसे तथा एक नियत मात्रामें ही माल बेचनेका अधिकार मैं रखूंगा ।
- (च) मैं अपने मालकी बिक्री-कीमत सही-सही खुले आम बताऊंगा ।
- (छ) मैं अपने मालमें किसी तरहकी मिलावट नहीं करूंगा और जानकारी होनेपर ऐसी चीज अपनी दुकानमें नहीं रखूंगा ।
- (२) खरीददारके नाते—
- (क) जिस चीजकी बाजारमें कमी हो, उसे जरूरतसे ज्यादा नहीं खरीदूंगा और कृत्रिम कमी पैदा करनेवाली प्रवृत्तियोंमें सहयोग नहीं दूंगा ।
- (ख) जिन चीजोंके भाव नियन्त्रित किये गये हों, वे नियन्त्रित भावसे ही खरीदनेकी मेरी कोशिश रहेगी, पर वे वैसे न मिलें तो मैं यथासम्भव उनके बिना ही निभानेकी कोशिश करूंगा ।
- (ग) सुविधा, आराम या सामाजिक कार्योंके लिए कानूनको टालकर या गुप्त रीतिसे चीज नहीं खरीदूंगा ।
- (घ) मैं किसीको रिश्वत नहीं दूंगा और दूसरोंकी अपेक्षा खुदके लिए बेजा फायदा उठानेके आशयसे न किसीसे सिफारिश-पत्र ही लूंगा ।
- (३) सरकारी कर्मचारी या सार्वजनिक कार्यकर्त्तके नाते मैं किसीसे रिश्वत या बख्शिश नहीं लूंगा और न अपने कर्तव्य पालनमें अधिकारी या बड़े आदमियोंके प्रभावसे च्युत ही होऊंगा ।
- मैं ज्यादासे ज्यादा लोगोंको शुद्ध व्यवहारी बनानेकी कोशिश करूंगा ।
- अब आप अणुव्रत-संघकी नियमावलीपर ध्यान दें । भिन्न स्थानोंसे संचालित भिन्न प्रवृत्तियोंमें कितना अनूठा सामंजस्य है । तभी तो कहना पड़ता है, 'सहृदयाने एक मत' ।
- आचार्यवरके वातावरणमें जबसे ही एक नैतिक आन्दोलनकी लहर उठी, तभीसे उस वातावरणमें धूल-मिलकर रहनेका मुझे अवसर मिला है । देहलीके प्रथम वार्षिक अधिवेशनके अनन्तर ही अणुव्रतोंकी विस्तृत व्याख्या लिख देनेका आदेश आचार्यवर द्वारा मिला । उसी निर्देशका पालन ही यह 'अणुव्रत दृष्टि' आपके सामने है, जिसमें अथ से इति तक मेरे शब्दोंमें आचार्यवरके विचार हैं ।

इस पुस्तकको समाप्त किये लगभग वर्षसे भी अधिक समय हो चुका है, प्रारम्भ कालसे और भी अधिक। मेरी पुस्तकका वर्तमान आज भूत बन चुका है। पठन कालमें पाठक इसका ध्यान रखेंगे।

भाषाको यथासम्भव सरल रखनेका ही लक्ष रखा गया है तथापि संस्कृताभ्यासी की लेखनीसे क्वचित् कठिनताका अवतरण भी क्षम्य है।

नियमोंकी रचना नकारात्मक विधिसे है। अतः व्याख्या भी आदेशमूलक न होकर निषेधपरक ही है, इसलिए भी भाषा-प्रवाहमें क्वचित् अस्वाभाविकताका-सा भान भी हो सकता है। एक संयमीकी भाषा सर्वथा प्रवृत्तिसूचक हो भी नहीं सकती।

अणुव्रत व्यवस्थाकी मूल भित्ति ही निषेधवादपर आधारित है। वस्तुतः विधि की अपेक्षा निषेध ही अधिक विशुद्ध रहा करता है। 'सत्य बोलो' की अपेक्षा 'असत्य मत बोलो' यह अधिक विशुद्ध है। सत्य बोलनेके आदेशकको अपने वाक्यकी विशुद्धि के लिए यह कहना होगा 'सत्यं ब्रूयात्' 'प्रियं ब्रूयात्' 'मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' किन्तु 'असत्य मत बोलो' इस भाषामें कोई अपवाद जोड़ देनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

दूसरी बात विधिकी अपेक्षा निषेधमें अल्प बोलनेसे ही कार्य चलता है, जीवनमें यह करो वह करो की यदि हम तालिका बनाने बैठेंगे तो सहस्रों नियमोंके निर्धारण की आवश्यकता होगी फिर भी तथ्य अधूरा रहेगा। यह मत करो वह मत करो इस पद्धतिके अनुसार जीवनका हेय तत्त्व सहज ही परे किया जा सकता है और उपादेय तत्त्व स्वयमेव सुस्थ रह जाता है। अस्तु, अणुव्रती-संघ जीवन शुद्धिका एक नकारात्मक मार्ग कहा जा सकता है।

आजकी समाज व्यवस्था प्रत्यक्ष प्रधान है। प्रत्यक्षमें यदि रोटी और कपड़ा ही समस्या रूप है तो आजके युग निर्माता रोटी और कपड़ेका ही दर्शन बना डालते हैं। अणुव्रत व्यवस्थामें क्षितिजके उस पारकी चिन्ताका ही मुख्य स्थान है।

भारतीय दार्शनिकोंने कभी भी प्रत्यक्षको ही सब कुछ नहीं माना। उनकी व्यवस्थामें जीवनका मुख्य लक्ष्य निःश्रेयस् प्राप्ति रहा और गौण फल प्रत्यक्ष समाज व्यवस्थाका। इसका यह तात्पर्य नहीं कि उन्होंने केवल परोक्षके लिए ही सोचा। तत्त्व यह है, उनके परोक्ष सिद्धिके साथ प्रत्यक्ष सिद्धिका द्वार हमेशा स्वयं खुला रहा है।

यही कारण है कि भारतीय संस्कृति हमेशा ही अहिंसा प्रधान रही है ! उन्होंने बताया—“हिंसा मत करो, असत्य मत बोलो, चोरी मत करो, भोग विलास मत करो, संग्रह मत करो । इससे तुम्हें निःश्रेयस् मिलेगा ।” अब गौर करें कि मोक्ष प्राप्ति के लिए समाज यदि हिंसा-शोषण आदिको त्याग कर चलता है, प्रत्यक्षकी समाज व्यवस्था अपने आप ही हो जाती है । रोटी और कपड़ेका प्रश्न फिर खड़ा नहीं रह जाता । अस्तु—अणुव्रत-संघका मौलिक उद्देश्य व्यक्तिको निःश्रेयस् की ओर अप्रसर करना है ।

जब कि सरदारशहरमें सन् १९४९ मार्च महीनेमें अणुव्रती-संघ का उद्घाटन समारोह चल रहा था, सहस्रोंकी परिषद् में नियमावली पढ़कर सुनाई जा रही थी, हरिजन पत्रमें गुलजारीलाल नन्दा द्वारा सर्वोदय सम्मेलनपर की गई कुछ प्रतिज्ञाओं का उल्लेख आया । पत्रमें प्रतिज्ञाओंके प्रसारका ही आग्रह था । प्रतिज्ञाएँ अणुव्रती संघके नियमोंसे मिलती-जुलती सी थीं । कुछ एक जो नई थीं आचार्यवरने उन्हें अणुव्रत नियमावलीमें ज्योंका त्यों स्थान दे दिया ।* यह आचार्यवरका दो नैतिक आन्दोलनोंको एक कड़ीमें जोड़ देनेका उदार दृष्टिकोण था । इसी प्रकार सर्वोदय आन्दोलनके संचालक आचार्य विनोबा भावे और आचार्य तुलसीका विगत मिंगसर मासमें देहलीमें जब मिलन हुआ, आचार्य विनोबा भावेने अणुव्रत कार्यक्रमका हृदयसे स्वागत किया और “कहा इस सम्बन्धके मेरे विचार तो आप ‘हरिजन’ में पढ़ ही चुके होंगे । ‘हरिजन’ में उल्लिखित विचार केवल मश्रुवालाके ही नहीं अपितु हम दोनोंके थे ।” अस्तु

मैं आशा करता हूँ देशके अन्यान्य उदारचेता विचारक भी नतिक उत्थानके इस पुनीत कार्यमें सहयोगका विनिमय करते रहेंगे ।

सम्बत् २००९
वैशाख कृष्ण तृतीया
सुजानगढ़ ।

मुनि नगराज

* अचार्य अणुव्रत नियम ६, ९

ब्रह्मचर्य अणुव्रत नियम ६

अपरिग्रह अणुव्रत नियम १२

विषय-सूची

	पृष्ठ
समपण	
लेखकीय	क
१—विधान	३
२—अणुव्रत	
(१) अहिंसा-अणुव्रत	२३
(२) सत्य-अणुव्रत	६७
(३) अचौर्य-अणुव्रत	७८
(४) ब्रह्मचर्य अणुव्रत	८८
(५) अपरिग्रह अणुव्रत	९५
३—साधनाके नियम	१०७
४—अणुव्रत आन्दोलन (११ सूत्री कार्यक्रम)	११२
५—आलोचनाके पथपर अणुव्रती-संघ	११५

अणुव्रत-दृष्टि

विधान

किसी भी संस्था, समाज और राष्ट्र का प्राण उसके संगठन पर अबलम्बित है। संगठन में ही उसकी सफलता और असफलताका बीज-मन्त्र छिपा रहता है। 'अणुव्रती-संघ'का संगठन एक अपने ही प्रकारका है। आलोचकों के हृदय में अनेकों प्रश्न और जिज्ञासाएं एकाएक उठ सकती हैं जब तक वैधानिक धाराओंका मौलिक दृष्टिकोण उनके सामने न आये। अतः प्रथमतः विधान-रचना सम्बन्धी दृष्टिकोणको स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

किसी भी विचारधाराके प्रसारके सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण हमारे सामने आ रहे हैं—प्रथम, जिस विचार-धाराका प्रसार करना हो उसके पीछे एक सुदृढ़ संगठन हो और उसके सहारे उस विचारका और उस संगठनका प्रसार किया जाये। तभी किसी विचार-सरणिका व्यापक होना सम्भव है।

दूसरा दृष्टिकोण जो गांधीवादी विचारकोंका है, उसके अनुसार किसी सिद्धान्तको जीवित रखने के लिये या प्रसारित करने के लिये किसी संगठन या परम्पराको जन्म देना दोषपूर्ण है। संगठन सीमित रहता है, वह व्यापक नहीं हो सकता; परम्परा आगे चलकर सजीव नहीं रहती, वह एक निर्जीव सम्प्रदायका रूप ले लेती है। वह सम्प्रदाय आगे चलकर समाजके लिए विष साबित होता है।

इसी दृष्टिकोणके अनुसार गांधी-विचार-धारा का प्रसार करने के लिये गांधीवादियोंने कोई तद्रूप संगठन नहीं बनाया। श्री विनोबा भावे मानते हैं, सर्वोदय समाज भी कोई संगठन नहीं है न उसके लिए तत्प्रकारके संगठनकी आवश्यकता है, जैसा कि उनकी निम्नोक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है—“सर्वोदय समाज अनियंत्रित विचार हैं जिन्हें हम

विश्वमें फलाना चाहते हैं। जिसे सारे विश्वमें फैलाना है वह सदेह नहीं हो सकता, विदेह ही हो सकता है। अगर हम इसे सदेह बनायेंगे तो काम अवश्य होगा पर विश्वव्यापी नहीं होगा।”

(सर्वोदय विचार पृष्ठ ३७)

‘अणुव्रती संघ’ की संघटना प्रथम विचार-सरणि पर ही अधिक अवलम्बित है। द्वितीय विचार-सरणिमें अवश्य एक गम्भीर दृष्टि है, किन्तु व्यवहारिकताके साथ उसका बहुत थोड़ा सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है। कम-से-कम अणुव्रतोंके विषय में तो यह सोचा ही जा सकता है कि बिना किसी संगठनकी भावना से यदि अणुव्रतोंकी नियमावली व्यक्ति-व्यक्तिके हाथों तक पहुँचा भी दी जाती तो उससे कुछ होनेवाला नहीं था। इने-गिने व्यक्ति अपनी श्रद्धा से यदि उन्हें अपने जीवन में उतार भी लेते तो उनसे किसी सामूहिक परिवर्तनको बल नहीं मिलता। बात रहती है व्यापकता की, वह भी केवल संगठन या असंगठन पर आधारित नहीं है। अन्य परिस्थितियोंका भी उसमें बहुत बड़ा हाथ रहता है। कितने व्यक्तियोंसे शुरू होने वाला साम्यवादी संगठन व्यापकताके दृष्टिकोणसे अद्वितीय संगठन बन चुका है। उसकी शक्ति के सामने सारा संसार सशक्त है। महात्मा गांधीके विचारोंका प्रसार करने के लिए कोई संगठन नहीं है, किन्तु अपनी सहज शक्तिसे ही वे संसार के कोने २ में कोटि-कोटि जनताके हृदय पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। अतः प्रसारके लिए संगठन या असंगठनको अधिक महत्व न भी दें तब भी यह तो मान ही लेना होगा कि संगठनके बिना कोई भी विचार-शक्ति चमकती नहीं और न वह कार्य-साधक हो सकती है। गांधीवाद और मार्क्सवाद इसके लिये ज्वलन्त उदाहरण हैं। मार्क्सवाद एक संगठित बल है। वह संसारको एक निर्दिष्ट दिशाकी ओर ले जानेकी क्षमता रख सकता है, गांधीवाद जन-जन के हृदयमें उससे भी अधिक व्याप्त हो सकता है; पर संगठन-शक्ति के अभाव में संसार को अपनी गतिविधि से चलाने की क्षमता नहीं रख सकता।

यदि हम सापेक्ष दृष्टिसे सोचते हैं तो 'अणुव्रती संघ' एक संगठन है और नहीं भी। नहीं तो इसलिये कि इसका लक्ष्य अधिकारों के लिये आगे बढ़ना नहीं है न उसका कोई ऐसा स्वतंत्र कार्यक्रम ही है जिसको आगे बढ़ाने में अणुव्रती को अन्य संगठनों के साथ डट जाना पड़ता हो। प्रत्येक व्यक्ति नकारात्मक ८५ नियमोंको अपने जीवनमें उतारे यही 'अणु-व्रती-संघ'का अनिवार्य कार्य है जो व्यक्ति-व्यक्ति की आत्मासे सम्बन्धित है। संगठन है इसलिए कि अणुव्रतों का जन-जन में प्रसार हो और विधिवत् उनका पालन हो। यह कार्य-भार महाव्रती साधु-संघ के अधि-नेता आचार्य श्री तुलसी ने सम्भाला है जो इस संघ के प्रवर्तक हैं।

किंतु यह संगठन है केवल कार्य-यन्त्र। इसके अतिरिक्त कि कार्य हो और वह विशृंखल न हो, इसका कोई उद्देश्य नहीं। इस प्रकार 'अणु-व्रती-संघ' के निर्माणमें पूर्वोक्त दोनों ही विचारधाराओंका प्रतीक है। दोनों ही दृष्टिकोणोंसे समुद्भूत विशेषताओं के ग्रहण और दोषों के परिहार का यथासाध्य ध्यान इसमें रखा गया है, जैसा कि उसकी विधान सम्बन्धी धाराओं और उनके दृष्टिकोणों का मनन करने से स्वयमेव प्रतीत होगा।

१—इस संगठन का नाम 'अणुव्रती-संघ' होगा।

व्रतों का विधिवत् पालन और प्रसार हो इस दृष्टि से संगठन आवश्यक माना गया है। संगठन के कारण ही 'अणुव्रती-संघ' में आ जाने वाले व्यक्ति को एक-एक व्रत के पालन के लिए उत्तरदायी होना होगा। यह कथन भी निराधार नहीं माना जा सकता कि संगठन आगे चलकर बहुधा रूढ़ि का रूप ले लेता है और अन्य भी बहुत से अवगुण उसमें समा जाते हैं। सोचना यह है कि क्या ऐसी भी कोई सद-प्रवृत्ति है जिसमें अवगुणों के आने की कोई आशंका ही न होती हो ? क्या किसी दोष-आशंका से मनुष्य किसी भी सत्कार्य में प्रवृत्त न हो ? यदि ऐसा ही सिद्धान्त बना लिया जाय तब तो इस संसार-यन्त्र को कुंठित बना देना होगा। वस्तुतः मनुष्य का कार्य केवल इतना ही है कि

वह अपने ध्येयमें प्रवृत्त होता हुआ आशंकित दोषों की ओर से सावधान रहे और उनसे बचने का प्रयत्न करता रहे। साधारण दोषों की आशंका से किसी महत्व पूर्ण प्रवृत्तिको, जो सहस्रों गुणों से परिपूर्ण है, उपेक्षित करना टिड्डियों के भय से खेती को उपेक्षित करने जैसा है।

‘अणुव्रती-संघ’ यह नाम एकाएक नहीं सम्भ्रम में आने वाला सा है। अतः यह बता देना भी आवश्यक होगा कि यह नामकरण किस आधार-भित्ति पर अवलम्बित है। प्राचीन आर्य संस्कृति में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच महाव्रत माने गये हैं। इन पांचों महाव्रतों को पूर्णतः जीवन में उतारने का तात्पर्य है सामाजिक जीवन से परे हो कर साधु-जीवन अर्थात् सन्यास जीवन में आ जाना। एक गृहस्थ पूर्णतः अपरिग्रही, पूर्णतः ब्रह्मचारी आदि नहीं हो सकता। उसे किसी परिधि तक परिग्रह आदि को स्थान देना ही पड़ता है। अतः उसके लिए अपरिग्रह आदि के व्रत सापेक्ष दृष्टिकोण से महान रहकर लघु हो जाते हैं। लघु का ही पर्यायवाची यहाँ ‘अणु’ शब्द है।

अणुव्रत शब्द की ऐसे कोई नई संघटना नहीं है। आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व भगवान श्री महावीर ने भी गृहस्थोपयोगी नियमों को ५ अणुव्रतों के नाम से ही प्रसारित किया। अतः यह विश्वास किया जाता है कि भारतीय प्राचीन संस्कृति का द्योतक यह ‘अणुव्रत’-शब्द अहिंसा और सत्य-प्रधान उसी प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करनेमें अवश्य सफल होगा। अणुव्रत नये नहीं हैं, नया है अणुव्रतोंका आजके जीवनमें प्रयुक्त करनेका प्रकार जो ‘अणुव्रती-संघ’ के रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

संघ के नाम-निर्धारण की चर्चामें इस अणुव्रती शब्द के विषय में कुछ विचारकों ने कहा कि यह शब्द कोई अधिक महत्त्व का द्योतक नहीं है। संगठनका नाम तो कोई आकर्षक होना चाहिए जिसके उच्चारण मात्र से श्रोता के हृदय पर संगठन के आदर्श का प्रतिबिम्ब पड़े और उसका हार्द समझने में भी अधिक कठिनाई प्रतीत न हो। पर आचार्य

श्री का दृष्टिकोण रहा, 'काम से पहले नाम का प्रतिबिम्ब केवल विज्ञापन है। मैं उसमें विश्वास नहीं रखता। यह ठीक है कि काम भी सुन्दर हो और नाम भी सुन्दर हो पर इससे भी अधिक ठीक मैं तो यह मानता हूँ कि नाम साधारण हो और काम सुन्दर हो। अतः भारतकी प्राचीनतम संस्कृति का द्योतक यही नाम मुझे अधिक पसन्द है।'।

द्वितीय प्रश्न अवश्य विचारने का था कि अणुव्रत शब्द एक इतना अपरिचित शब्द है कि ग्रामीण और साधारण जनता की तो बात ही क्या शिक्षित वर्ग भी सहसा इसके हार्द को नहीं समझेगा। किन्तु यह मानते हुए कि इस प्रकारके अपरिचित और नवीन शब्दोंमें उक्त प्रकार की कमी के साथ-साथ हरएक श्रोता के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न करने की बहुत बड़ी शक्ति भी हुआ करती है, जो तद्विषयक प्रसार में बड़ी सहायक होती है यही नाम रखा गया। दूसरे, प्रचारकों को भी इस प्रकार के शब्द-माध्यम से जन-सम्पर्क में आनेका अधिक अवसर मिलता है, जो विचारों के प्रसार का केन्द्र बन जाता है। इत्यादि दृष्टिकोणों से संगठन का नाम 'अणुव्रती-संघ' बहुत प्रकार से उपयुक्त मानकर व्यवहृत किया गया है।

कितनेक विचारकों की दृष्टि में 'संघ' शब्द कुछ अव्यापकता का द्योतक है और समाजादि शब्द अधिक व्यापकता के। पर आचार्य श्री के विचारों से तो व्यापकता और अव्यापकता कार्य-शक्ति में है, न कि शब्द-शक्ति में।

अतः इन चर्चाओं को आवश्यकता से अधिक महत्त्व न दें तो इस शब्द-संघटना में हमें निर्दोषता के ही दर्शन होंगे।

२—उद्देश्य—

क—ज्ञाति, वर्ण, देश और धर्मका भेदभाव न रखते हुए मानव मात्र को सदाचार की ओर आकृष्ट करना।

ख—मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि तत्त्वों की उपासना का व्रती बनाना।

ग—आध्यात्मिकता के प्रचार द्वारा गृहस्थ-जीवन के नैतिक स्तर को ऊँचा करना ।

घ—अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्वमैत्री व विश्वशांति का प्रसार करना ।

उद्देश्य की पवित्रता में सन्देह को अवकाश नहीं है। संघ का उद्देश्य विशुद्ध आध्यात्मिक है। अहिंसा एक आध्यात्मिक अस्त्र था। महात्मा गांधी ने उसका उपयोग राजनीति में किया। सारे संसारने उसका महत्व समझा। त्याग और संयम भी आध्यात्मिक शस्त्र हैं। सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में यदि इनका विधिवत् प्रयोग हुआ तो इनके महत्त्व को भी संसार समझेगा। 'अणु-व्रती-संघ' के समस्त नियम त्याग और संयम पर ही आधारित हैं। वस्तुतः 'अणुव्रती-संघ' आज के सामाजिक व आर्थिक जीवनकी विभिन्न समस्याओं का एक सजीव हल है।

३—इस संघ में सम्मिलित होनेवाला व्यक्ति 'अणुव्रती' कहा जायगा।

अणुव्रतोंको धारण करनेवाला अणुव्रती नामसे पुकारा जायगा। इस धारा का उद्देश्य 'संघ' शब्द के साथ व्यवहृत 'अणुव्रती' विशेषण को स्पष्ट कर देता है। विशेष संज्ञा निर्धारण की सार्थकता यही है कि अणु-व्रती जिस व्यापार, नौकरी आदि जिस किसी सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश करेगा उसकी प्रवृत्ति में अवश्य विलक्षण आदर्श होगा। वह आदर्श यदि अणुव्रती शब्द के साथ प्रख्यात होगा तो अवश्य वह 'अणुव्रती-संघ' की प्रतिष्ठा को बल देगा अर्थात् उसके प्रचार का कारण बनेगा। इस धाराके पीछे एक अन्तरङ्ग दृष्टिकोण यह है कि यदि अणुव्रती होते हुए किसी ने अपने नियमों की उपेक्षा की तो वह अणुव्रती संज्ञा से परिचित होने के कारण जनता द्वारा प्रतिक्षण सावधान किया जाता रहेगा।

४—संघ में सम्मिलित करने का अधिकार एक मात्र 'संघ-प्रवर्तक' को रहेगा।

'संघ-प्रवर्तक' की कल्पना और प्रवेश-अधिकार को उनके हाथों तक

सीमित कर देना ये दो बातें किसी विचारक के विचार-तंतुओं में सहसा एक नया स्पन्दन पैदा कर सकती हैं तथा जाति, धर्म, देश आदि भेद-विहीन व्यापक उद्देश्य को संकीर्ण कर देनेवाली सी प्रतीत होती हैं। किन्तु अन्तर्निहित उद्देश्य तक पहुँच जाने के पश्चात् वस्तुस्थिति सम्भवतः और ही मिलेगी।

बहुधा यह देखा जाता है कि आजकल के अधिकांश संगठन विश्व-व्यापी होने का विश्वास लेकर उठते हैं, अतः उनके नियमोपनियम भी उसी दृष्टिकोणसे बनाये जाते हैं कि कोई भी नियम उसके विश्वव्यापी या देशव्यापी होनेमें बाधक न हो। व्यापकताके सारे प्रवेश-द्वार खुले रखे जाते हैं, पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है कि प्रवेश द्वार खुले हैं इसलिये सारा विश्व उसमें प्रविष्ट हो ही जाय। फल यह होता है कि उन विशाल द्वारों से अनुत्तरदायी व्यक्ति उन संगठनोंमें आकर प्रविष्ट हो जाते हैं। और सुदृढ़ अनुशासन के अभाव में उद्देश्यों और नियमों की भी उपेक्षा करते हैं। अन्ततोगत्वा न तो वह संगठन विश्वव्यापी ही बनता है और न वह अपनी मूल स्थितिमें ही पवित्र रहता है। संसार में उसका एक निर्जीव रूढ़ि या परम्परा के अतिरिक्त कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

‘अणुव्रती-संघ’ की इस धारा से स्पष्ट हो जाता है कि संघका परम लक्ष्य अपने उद्देश्य को या दूसरे शब्दों में अपने मूल स्वरूप को विशुद्ध रखने का है और गौण लक्ष्य व्यापकता का। इसका यह अर्थ तो नहीं कि आचार्य श्री तुलसी व्यापकता को नहीं चाहते किन्तु उनका विश्वास तो यह है यदि १०० भी व्यक्ति सही अर्थ में अणुव्रतों को पालनेवाले हुए तो संघ विश्वव्यापी न भी हुआ तो भी सब को मानना होगा कि कुछ कार्य तो हुआ। यदि अपने लक्ष्यसे परे होकर वह विश्व-व्यापी हुआ भी तो संसारकी अन्य परम्पराओंमें एक परम्परा और बढ़ी, कार्य कुछ नहीं हुआ। उनकी दृष्टिमें वही व्यापकता अवश्य उपादेय है जो मूल उद्देश्य की सफलता के साथ-साथ उपलब्ध होती है।

इस धारा के मूल में तात्पर्य यही है कि सुपरीक्षित व्यक्ति ही अणु-व्रती बनाये जाय ताकि 'अणुव्रती-संघ' में अणुव्रतोंकी सजीवता रहे।

५—किसी भी धर्म, दल, जाति, वर्ण और देश के स्त्री-पुरुष अणु-व्रती होने के अधिकारी होंगे।

अणुव्रतों की रचना आध्यात्मिक दृष्टिकोण से की गयी है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न धर्मों का भिन्न-भिन्न रहता है। किन्तु निर्दिष्ट अणुव्रतों की इस पृष्ठ-भूमि तक सम्भवतः सब धर्म एक हैं। इसलिये धर्म-भेद इस संगठन में बाधक नहीं हो सकता। 'संघ-प्रवर्त्तक' एक धर्म-विशेष के आचार्य हैं इसलिये भी कुछ व्यक्तियोंके विचार में इसकी सार्वजनिकता के प्रति संदेह हो सकता है। पर वह निराधार संदेह होगा। धर्म अणुव्रतियों का भी जब पृथक् २ है, अपना-अपना एक-एक है, तब 'संघ-प्रवर्त्तक' यदि किसी एक धर्मविशेष के नेता हों तो कौन सी आपत्ति हो सकती है। वह उनका वैयक्तिक प्रश्न है। किसी पद्धति से अध्यक्ष का चुनाव यदि होता है वह किसी एक धर्म में विश्वास रखनेवाला तो हो ही सकता है, जब कि अणुव्रतियों के विभिन्न धर्मावलम्बी हो सकने का विधान है। दूसरी बात यह है कि 'अणुव्रती-संघ' अणुव्रतों के पालन या अपालनके विषय में ही 'संघ-प्रवर्त्तक' द्वारा अनुशासित है, अन्यान्य अपनी-अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों के लिये प्रत्येक अणुव्रती स्वतन्त्र है।

'दल' का तात्पर्य: आज विविध प्रकार के संगठन देखे जाते हैं—राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि। आज अधिकांश व्यक्ति भी अपने विचारों के अनुकूल किसी-न-किसी दल से सम्बन्धित रहते हैं। किसी भी संस्था या सभाका सदस्य 'अणुव्रती-संघ' में प्रविष्ट हो सकता है बशर्त्ते कि वह अणुव्रतों का विधिवत पालन कर सकता हो।

६—अणुव्रती को निर्धारित प्रतिज्ञाओंका व्रत रूप से (त्याग रूप से) पालन करना होगा।

प्रायः समस्त भारतीय और अभारतीय भी त्याग अर्थात् व्रत का

बहुत बड़ा आध्यात्मिक महत्व मानते हैं, व्रत के खण्डन को महा पाप मानते हैं। आमतौर से प्रचलित है, व्रत न लेना पाप और लेकर तोड़ देना महा पाप है।

मनुष्यों को पाप प्रवृत्तियों से बचाये रखने के लिये इससे बढ़कर और कोई मानसिक शृंखला नहीं हो सकती। यह एक ही धारा सारे 'अणुव्रती-संघ' के विधान को सजीव बनाने में पूरा योग देती है। बहुधा देखा जाता है कि बहुत सी संस्थाओं में बहुत से नैतिक नियम बनाये जाते हैं। पर वह नैतिकता सदस्यों के आचरणों में पूरी २ देखने को नहीं मिलती। वे नियम विधान व नियमोपनियम की पुस्तिका तक ही रह जाते हैं। यह आक्षेप नहीं, वस्तुस्थिति को समझना है। 'अणु व्रती-संघ' इस दुर्बलता से बचा रहे इसीलिये प्रत्येक अणुव्रती को त्याग की शृंखला से जकड़ा गया है। त्याग एक आत्मानुशासन है, उसे प्रत्येक व्यक्तिको इच्छापूर्वक मानना ही पड़ता है।

अब तक ६२१ व्यक्ति अणुव्रती बने हैं*। सैकड़ों भारतीय और बैदेशिक पत्रों में तद्विषयक चर्चा हुई है। बहुतसे आलोचक यह संदेह करते हैं कि क्या अणुव्रती सचमुच उन कठोर अणुव्रतों को निभा लेंगे? वैसे तो किसी भी मनुष्य की सच्चाई की स्थिरता के विषयमें कोई अन्य सदा के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता। किन्तु 'अणुव्रती-संघ' के विधान को देखकर सम्भवतः हरएकको विश्वास करना होगा कि 'अणु-व्रती-संघ' में नियम-पालन सम्बन्धी कोई सामूहिक दुर्बलता घर नहीं कर सकती। सैकड़ों में सर्वत्र दो चार व्यक्ति अपवाद-रूप हो सकते हैं, वह दूसरी बात होगी। 'अणुव्रती-संघ' के विधान-निर्माण में पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है कि इस संगठन में ऐसा एक भी स्रोत खुला न रहे जिससे किसी दुर्बलता को अवकाश मिल सकता हो। वस्तुतः

* यह संख्या सं० २००७ देहली अधिवेशन तक की है। वर्तमान सं० २००९ के तृतीय अधिवेशन की संख्या १४०३ है। —संयोजक

देखा जाये तो इन अणुव्रतों को संगठन के रूप में लाने का प्रमुख उद्देश्य भी यही है कि उनका यथावत् पालन हो ।

आगे कुछ धारार्यें और भी मिलेंगी जो इसी धारा के उद्देश्य को पुष्ट करनेवाली होंगी ।

७—प्रथम बारह मास में अणुव्रती त्यागवत् साधना भी कर सकेंगे ।

धारा नं० ६ बताती है कि 'अणुव्रती-संघ' में आनेवाले व्यक्ति को सारे नियम त्याग के रूप में पालन करने होंगे । चूंकि त्याग एक उत्कृष्ट आत्मानुशासन है, उसका आध्यात्मिक सुफल जैसा अनुपम है, त्याग-भंगका कुफल भी उतना ही भयंकर है । त्याग लेनेसे पूर्व हरएक व्यक्ति त्याग-भंग न करनेका दृढ़ संकल्प कर ही लेता है । त्याग-भंग की कोई भी संभावना के रहते कोई विचारवान व्यक्ति त्याग लेने को तत्पर नहीं होता । त्याग को भारतवासी लोग महान् वस्तु मानते हैं और मानना भी चाहिए । अणुव्रती होने की भावना रखने वाला व्यक्ति यदि एकाएक त्याग के निरपवाद मार्ग में कदम नहीं बढ़ा सकता तो वह अणुव्रती होकर प्रथम बारह मास तक केवल साधना भी कर सकेगा । किन्तु वह साधना केवल कथन रूप ही नहीं होगी, वह वस्तुतः त्यागवत् अर्थात् त्याग समान ही होनी चाहिए । यह इस धारा का हार्द है ।

प्रश्न यह उठता है कि उक्त स्थिति में त्याग और त्यागवत् में अन्तर क्या रहा ? बात स्पष्ट है । साधना में वर्तनेवाले व्यक्ति से यदि कहीं चूक होती है तो वह त्याग-भंग के दोष से बच जाता है ।

कोई व्यक्ति यह सोचकर कि त्याग लेना ही त्याग-भंगकी संभावना को पैदा करता है, सदा के लिए ही साधना में नहीं चल सकता । उसे निर्धारित अवधि के बाद त्याग का आत्मबल जागृत करना होगा ।

साधना का काल प्रथम १२ मास है । इस अवधि के पश्चात् यदि

कोई अणुव्रती किसी विशेष स्थिति से त्याग के मार्ग पर नहीं आ सकता तो उसे अपनी स्थिति 'संघ-प्रवर्त्तक' के समक्ष रख देनी होगी।

किसी भी व्यक्ति को आजीवन अणुव्रती बने रहने की भावना से ही अपना नाम साधना में देना चाहिए।

त्याग भावनाओं का उत्कृष्टतम संकल्प है। कुछ व्यक्ति यह तर्क उपस्थित किया करते हैं कि हम तो बुरे कामों से बचने का विचार रखते हैं, त्याग को हम कुछ नहीं समझते। ऐसे व्यक्तियों से कहना चाहिए, आप बुराइयों से बचने का कच्चा संकल्प रखते हैं, यदि पक्का संकल्प रखते हैं तो त्याग करने से हिचकिचाहट क्यों? उत्कृष्टतम संकल्प ही जब त्याग है तो त्याग शब्द से अकारण परहेज क्यों?

८—कोई अणुव्रती अन्य अणुव्रती को नियम व अनुशासन भंग करते देखकर (सद्भाव-पूर्वक) या तो उसी व्यक्ति को सचेष्ट होने के लिए कहेगा या 'संघ-प्रवर्त्तक' से निवेदन करेगा। दूसरों में प्रचार नहीं करेगा।

आज के मानव-जीवन में सबसे बुरी बात है दूसरों की बुराइयों का प्रचार करना। आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के, एक समाज दूसरे समाज के और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के अवगुणों का प्रचार करने में संलग्न है। इस कारणसे ही किस तरह राग, द्वेष, कलह, ईर्ष्या आदि का उद्भव होता है, यह सर्वविदित है।

प्रश्न यह रहता है कि यदि बुराइयों का उल्लेख न किया जाय तो वे मनुष्यसे दूर ही कैसे हो सकती हैं। किसी व्यक्ति की बुराई को जनतामें प्रसारित किया जाये, यह उसे मिटाने का सही हल नहीं है। इससे तो प्रत्युत प्रतिद्वन्द्विता, असहिष्णुता, गुणोपेक्षा और दोष-निरीक्षण की वृत्ति बढ़ती है। संगठन को सुरक्षित रखते हुए बुराइयों को दूर करने का सरलतम मार्ग यही है कि प्रथमतः उस व्यक्ति को सावधान किया जाये, यदि वह स्वयं अपनी त्रुटिको दूर करने में समर्थ न हो सकता हो, तब उसकी चर्चा 'संघ-प्रवर्त्तक' के समक्ष की जाये। इस विषय में वे

स्वयं जाँच करेंगे। त्रुटि देखने वाला इतना कर देने मात्र से कर्तव्य मुक्त होगा। बहुधा देखा जाता है कि अधिकतर लोग न तो त्रुटि करनेवाले को सावधान करते हैं और न किसी ऐसे व्यक्ति को उससे अवगत कराते हैं जो त्रुटि का समुचित प्रतिकार कर सकता हो। वे तो केवल सर्व-साधारण में उसका उड़ाह करते हैं। इस प्रवृत्तिसे बहुत सी बुराइयाँ पैदा होती हैं पर गुण एक भी पैदा नहीं होता। उक्त धारा अणुव्रतियों के पारस्परिक व्यवहार में एक नई परम्परा शुरू करती है। यदि सर्व-साधारण जनता में भी इसका प्रसार हुआ तो सम्भवतः बहुत सी बुराइयाँ दूर हो सकेंगी।

६—प्रत्येक 'अणुव्रती' संघ के प्रति सद्भावना व निष्ठा रखेगा।

किसी भी संगठन के शिथिल होने के कारणों में संगठन के प्रति सदस्यों की पूर्ण निष्ठा का न होना भी एक प्रमुख कारण है। सदस्य भी जब निष्ठा परायण न हों तब अन्य लोगों के संगठन की ओर आकर्षित होने की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। ऐसे तो धारा नं० ८ में जो तत्त्व प्रतिपादित किया गया है, अंशतः धारा नं० ६ में भी वही प्रतिपादित किया गया है; पर ऐसा आवश्यक था। धारा नं० ८ अणुव्रती के प्रति अणुव्रती का क्या कर्तव्य है; इस ओर संकेत करती है। धारा नं० ६ संघ के प्रति अणुव्रती का क्या कर्तव्य है, इस बात का दिग्दर्शन कराती है।

इस धारा का यह तात्पर्य भी नहीं कि संघकी गतिविधि के विषय में अणुव्रती को कुछ भी आलोचन-प्रत्यालोचन का अधिकार नहीं। विधिरूप से की जाने वाली उचित आलोचना के लिए प्रत्येक अणुव्रती स्वतन्त्र है। आलोचना कहाँ और किस रूप में होनी चाहिए यह भी एक विज्ञान है, जो अंशतः धारा नं० ८ में बताया जा चुका है। विधि-पूर्वक की जाने वाली आलोचना आलोच्य वस्तु को बल देती है और अविधिपूर्वक की जानेवाली आलोचना आलोच्य वस्तु को और भी अधिक आलोच्य बनाने में सहायक होती है। संगठन को श्रृंखलित

रखने में यह धारा अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

१०—अणुव्रती को प्रत्येक पक्ष में कम से कम एक बार ली हुई प्रतिज्ञाओं का स्मरण एवं लगे हुए दोषों के लिए आत्मपर्यालोचन कर आत्म-शुद्धि करनी होगी।

सत्य को सुरक्षित रखने के लिए अनेक नियम और मर्यादाएँ आवश्यक हैं। तथापि, अन्ततोगत्वा सारा सत्य आत्म-निर्भर है। ऐसे तो नियमों को यथोचित रूपसे समझ कर ही अणुव्रती बनने का विधान है, फिर भी इस धारा के अनुसार प्रति पक्ष में उनका संस्मरण आवश्यक होगा। नियमों में मानव दुर्बलता के कारण लगे हुए दोषों को मादकर उनका प्रायश्चित्त करना होगा। प्रायश्चित्त के दो प्रकार हैं—साधारण स्वलनाओं के लिए आत्मानुताप तथा भविष्य में न करने का संकल्प। विशेष त्रुटियों के लिये यथावसर 'संघ-प्रवर्त्तक' को निवेदन कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना होगा।

११—अणुव्रतियों में परस्पर कटु व्यवहार हो जाय तो १५ दिन की अवधि में क्षमा याचना कर लें। यदि यह शक्य न हो तो यथासम्भव 'संघ-प्रवर्त्तक' को निवेदन करें।

आवश्यक तो यह है कि अणुव्रती की ओर से किसी के साथ अशिष्ट और कटु व्यवहार न हो, वह तो अपने हर कार्य में क्षमा व सहनशीलता का ही परिचय दे। यह तो और भी बुरा होता है, यदि अणुव्रती किसी निरर्थक और तुच्छ विषय को लेकर परस्पर भगाड़ें। उन्हें तो विश्व-बन्धुता और विश्व-मैत्री के आदर्श पर पहुँचना है। यह धारा बताती है कि उस आदर्श को अपने संघ तक तो अनिवार्यतः उपस्थित करें ही और सर्व-साधारण तक इस आदर्श को उपस्थित करने में वे सचेष्ट और जागरूक रहें।

क्षमा-याचना कलहों की उपशान्ति का अमोघ मंत्र है। क्षमा मांगने व मंगवाने का व्यवहार सर्वसाधारण जनता में भी साधारणतः

प्रचलित है। किन्तु क्षमा विषयक प्रचलित प्रयोग निर्दोष नहीं; इसीलिए उसका पूर्ण सुन्दर फल जनता को नहीं मिल रहा है। वहाँ किसी भी कलह के समझौते का प्रारम्भ क्षमा मंगवाने से होता है और अणु-व्रती का व्यवहार क्षमा लेने और क्षमा करने से। प्रत्येक अणुव्रती के लिये यही आवश्यक होगा, यदि अपनी त्रुटि है या सामने वाले पक्ष की त्रुटि है, वह अपनी ओरसे ही पहले शुरू करे। यदि क्षमा लेनी है तो उसके लिए प्रतिपक्षी से कहलाने के हेतु प्रतीक्षा न करे, यदि क्षमा करने का प्रसङ्ग है तो उससे क्षमा-याचना करवानेकी चेष्टा न कर स्वयं उसे क्षमा प्रदान करे। आशा है, इसी तत्त्व को जीवन में उतार कर 'अणुव्रती' संसार के सामने एक नया आदर्श उपस्थित कर सकेंगे और संसार उसे अपनाने के लिए लालायित होगा।

इस प्रयत्न से भी यदि अणुव्रती मनोमालिन्य को दूर करने में सफल न हो सकें तो उनका कर्तव्य है कि वे उस स्थितिको यथा-अवसर 'संघ-प्रवर्त्तक' के सामने रखें। यह विधान भी इस दृष्टिकोण से रखा गया है कि वह मनोमालिन्य आगे न बढ़े; 'संघ प्रवर्त्तक' किसी तरह दोनों व्यक्तियों को समझा-बुझाकर उसे दूर कर सकें।

आचार्यवर ने प्रसङ्गवश कई बार कहा था, मैं तो यह चाहता हूँ कि 'अणुव्रती-संघ'में ऐसा नियम ही बना दूँ कि अणुव्रती अपने पारस्परिक किसी वैमनस्य के कारण राजकीय न्यायालय की शरण ही न लें, फिर भी यह अभी तक विचाराधीन ही है। आशा है, विधानकी यह ११ वीं धारा ही उक्त प्रकार के नियम का कार्य कर देगी।

इस धारा का बहू तात्पर्य भी नहीं कि अणुव्रतियों में कोई मत-भेद रह ही नहीं सकता। यह तो सम्भव भी कैसे हो जब कि विधाना-नुसार विभिन्न दल, वर्ग, जाति और धर्म के लोग संघ में सम्मिलित हो सकते हैं। मतभेद तो बहुत विषयोंमें सम्भावित है ही। मान लिया जाय कि एक अणुव्रती किसी राजनीतिक संस्था का कार्यकर्ता है और एक किसी का। दोनों एक ही प्रान्त या गाँव में कार्य करनेवाले हैं। एक दृष्टि

से वे एक दूसरे के प्रतिपक्षी हैं। 'अणुव्रती-संघ' के नियम यहाँ तक कोई बाधा नहीं देते। दूसरों में और उनमें अन्तर यही होगा कि अन्यत्र दो विरोधी कार्यकर्त्ताओं में मतभेद के साथ मन-भेद भी देखा जाता है, वे एक दूसरे पर वैयक्तिक रूप से भी हमला करते हैं, अनैतिक उपायों तक को काम में ले लेते हैं ; अणुव्रतियों में परस्पर मतभेद हो सकता है, पर मनभेद नहीं होना चाहिये। उनके वैयक्तिक व्यवहार में कटुता नहीं आनी चाहिए, उनके लिए अनैतिक आचरण उपादेय नहीं होंगे।

इस प्रकार सिद्धान्त-भेद बहुत कारणों से सम्भव है। क्षमा-याचना का प्रयोजन वैयक्तिक कटु व्यवहार से है।

१९—नियमों का निर्माण व स्पष्टीकरण आदि 'संघ-प्रवर्तक' ही करेंगे और वे समस्त अणुव्रतियों को मान्य होंगे।

नियमों के शब्द सबके लिये एक रूप में होते हैं, किन्तु भाव विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न रूप में निकाले जा सकते हैं। यही तो कारण है कि वेदों से, आगमों से व तत्प्रकारके अन्याय मूल ग्रन्थों से विभिन्न अर्थ निकालकर विभिन्न सम्प्रदाय चल पड़ते हैं। संगठन में भावों को एक-रूपता रहे, इस दृष्टिकोणसे संघ-प्रवर्तक-कृत स्पष्टीकरण ही मान्य है, ऐसा इस धारा में बताया गया है।

बहुत लोग स्वार्थवश व अपनी दुर्बलता को निभाने के लिये भी शब्दों को तोड़-मोड़ कर विभिन्न अर्थ निकाल लिया करते हैं। इस धारासे इस वृत्ति का भी अवरोध होगा।

नये नियमों का निर्माण व निर्धारित नियमों में परिवर्धन तो आचार्यवर का प्रमुख लक्ष्य है ही। जैसा कि उन्होंने कई बार स्पष्ट किया है, "इस योजना में मैं चाहता था उतने कड़े नियम नहीं कर पाया क्योंकि जनता का जीवन-स्तर आशातीत नीचा हो रहा है। उसे एकाएक ऊँचा उठाना दुष्कर है। सम्भव उपायों से काम लेना उचित था और

बैसा ही किया गया है। बथासम्भव और भी नैतिकता के नियमों का समावेश किया जाता रहेगा।”*

आजकी स्थिति में ये नियम बहुत कड़े हैं किन्तु आदर्श पुरुष बनने के लिए और भी नियमों की आवश्यकता है। उनका द्वार खुला रखा गया है। यथा अवसर नियम बढ़ते जायेंगे और जो हैं, वे कड़े होते जायेंगे। श्री कीशोरलाल मश्रूवाला प्रभृति कतिपय विचारकों का सुझाव है, “कई नियम कुछ और कैसे जा सकते हैं”। इस धाराके अनुसार उक्त प्रकार के आवश्यक सुझावों को यथा अवसर कार्यान्वित किया जा सकेगा।

इस धाराके फलस्वरूप ‘संघ-प्रवर्त्तक’ भविष्य में जो नये नियम बनायेंगे व निर्धारित नियमों को कड़ा करेंगे वे समस्त अणुव्रतियों को बिना किसी ननु-नचके मान्य होंगे।

१३—इस संघमें सम्मिलित होनेवाला व्यक्ति यदि एक या दो नियम पालने में असमर्थ हो तो वह ‘संघ-प्रवर्त्तक’ को निवेदन कर उनके स्थानमें दूसरे विशिष्ट नियमों द्वारा सम्मिलित हो सकेगा।

विधान की धारा नं ६ के अनुसार किसी भी नियम के न पालने का कोई अपवाद नहीं है। बाधा सामने आती है। बहुत व्यक्ति ऐसे मिलते हैं जो आदि से अन्त तक सभी नियमों का पालन करने के लिए समुद्यत हैं, सिवाय किसी एक-आध साधारणतम नियम के। वह भी इसलिए कि कुछ आदतें मनुष्य के जीवन से इतनी सम्बन्धित हो जाती हैं कि वे एकाएक छोड़ी नहीं जा सकतीं। उनका सम्बन्ध केवल मन से न रह कर शरीर से भी हो जाता है। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को धूम्रपान की आदत है, धूम्रपान छोड़ते ही उसे बीमार पड़ जाना पड़ता है। बहुत कालसे पीते रहने के कारण उसके शारिरिक संस्कार भी ऐसे ही बन चुके हैं। ऐसी स्थिति में जब कि वह अन्य समस्त नियमों के पालनार्थ समुद्यत है उसको संघमें न लिया जाय, यह भी कुछ विचित्र-सा

* उद्घाटन सन्देश—‘अणुव्रती-संघ और अणुव्रत’ पुस्तक से।

लगता है। अन्य और भी बहुत से व्यक्तियों के विविध रूपसे एक आध ऐसी बाधा मिल ही जाती है। आचार्यवरने नियम और अनुशासन की दृढ़ता का ध्यान रखते हुए उन्हें प्रवेश देनेका यह सुन्दर मार्ग अपनाया है जो ऊपर धारामें सुस्पष्ट है। इससे शिथिल व्यक्ति संघमें नहीं आ सकते और जो योग्य हैं वे किसी साधारणतम आपत्ति से संघमें आने से वंचित नहीं रह जाते।

यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि किसी एक भी मौलिक नियम को बाद नहीं दिया जा सकता। कोई व्यक्ति कहे, मैं केवल चोर-बाजार के नियम को बाद देना चाहता हूँ, यह अवैधानिक होगा। मौलिक-अमौलिक सम्बन्धी निर्णय 'संघ-प्रवर्तक' ही करेंगे।

१४—'संघ-प्रवर्तक' तेरापंथ सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य रहेंगे।

इस धारासे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संगठन एक तंत्रात्मक प्रणाली पर आधारित है। आज का लोक-प्रवाह जनतंत्र के अनुकूल है। पर साथ २ आजके विचारक यह भी सोचनेको बाध्य होते हैं कि एकतंत्र के कतिपय कटु अनुभवों के पश्चात् जिस आदर्शपूर्ण जनतंत्रकी कल्पना की गई थी वह आदर्श केवल कल्पना और सिद्धांत तक ही सीमित रहा। व्यावहारिकता में तो जनतंत्र का स्वरूप विकृत एकतंत्र से भी अधिक भयानक नजर आ रहा है। अस्तु, हमें एकतंत्र और जनतंत्र की लम्बी चर्चामें नहीं जाना है। यहाँ तो केवल यह बता देना ही प्रयाप्त होगा कि जहाँ चरित्र-निर्माण का प्रश्न है, अणुव्रतियों का निरीक्षक, निर्देशक व संचालक कोई महाव्रती अधिनेता हो, यही आवश्यक समझा गया। वह महाव्रती भी कुशल अनुशासक हो, ऐसी स्थितिमें सर्वतो-धिक सुन्दर यही माना गया। संघ-संस्थापक आचार्य श्री तुलसी तो वर्तमान 'संघ-प्रवर्तक' हैं ही, भविष्य के लिये भी यही विधान रक्खा जाय कि उनके उत्तरवर्ती तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य ही, संघ का प्रवर्तन करें। इस प्रकार 'अणुव्रती-संघ'की कड़ी तेरापंथी साधु-संघ से हमेशा के लिये जुड़ जाती है। एक धर्म विशेष के साथ 'अणुव्रती-संघ' काइनु

जाना कुछ लोगोंके लिये अखरने जैसा होता है, वे संघकी सार्वजनिकता में अविश्वास करने लगते हैं। किन्तु यह अविश्वास वस्तु-स्थिति तक नहीं पहुँचने का है। यह ठीक है कि तेरापन्थ एक स्वतंत्र धर्म सम्प्रदाय है, वह पूर्णतः जैन दर्शन पर आधारित है, पर इससे क्या ? 'अणुव्रती-संघ' का एक भी नियम किसी धर्म विशेष के लक्ष्यको लेकर नहीं बनाया गया है, वे पूर्ण सार्वजनिक हैं, सब धर्मोंके हैं। इसके अतिरिक्त विधान का भी ऐसा कोई नियम नहीं जिसके अनुसार अणुव्रती होने के नाते किसी व्यक्ति को तेरापन्थ धर्मकी ओर बलात् मुकना पड़ता हो। 'अणुव्रती-संघ'के संस्थापक आचार्य श्री तुलसी इस विषय में कितने स्पष्ट हैं, यह एक प्रश्नोत्तर से पूर्णतः सिद्ध हो जाता है। देहली में एक सार्वजनिक आयोजनमें जब आचार्य वरने 'अणुव्रती-संघ'के विषयमें प्रकाश डाला, जब कि सहस्रों व्यक्ति उपस्थित थे, एक व्यक्ति ने प्रश्न किया— 'अणुव्रती होनेवालेको क्या आपको गुरु मान लेना होगा ?' आचार्य वरने कहा—'यह तो प्रश्न ही उठते जैसा नहीं है क्योंकि ऐसा कोई नियम अणुव्रती के लिये नहीं है जो उसे तेरापन्थ के लिये या मुझे गुरु मान लेने के लिये बाध्य करता हो।' प्रश्नकर्ता ने पुनः कहा—'क्या यह अनिवार्य नहीं होगा कि प्रत्येक अणुव्रती आपको नमस्कार करे ?' आचार्यवरने कहा—'मैं नमस्कार करवानेका भूखा नहीं हूँ, यह अणुव्रती की इच्छा पर निर्भर है कि वह मुझे प्रणाम करे या नहीं। अणुव्रती के लिये अणुव्रतों के पालन करनेका विधान है, मुझे प्रणाम करनेका नहीं।' अस्तु।

सोचने की बात तो यह है कि लोगोंकी इस आपत्ति का अर्थ ही क्या है कि एक सार्वजनिक संघ के अधिनेता एक धर्म विशेष के आचार्य ही हों क्यों ?

किसी भी धर्म को मानना, उसमें सन्न्यस्त होना या आचार्य होना किसी व्यक्ति का वैयक्तिक स्वरूप होता है, उसकी अध्यक्षता से सार्वजनिक संघ या संस्था की गतिविधिमें बाधा हो ही क्या सकती है ?

बाधा की सम्भावना तो तब की जा सकती है जब वह अपने वैयक्तिक स्वरूप को उस संघ या संस्था पर लादना चाहता है। किसी भी सावजनिक संस्था का अध्यक्ष यदि किसी भी प्रणाली से बनाया जाता है तो यह कहीं का भी नियम नहीं है कि वह किसी धर्म या दर्शन का माननेवाला हो ही न। वह अपने आप में स्वतन्त्र है चाहे वह किसी भी विचार या आचार विशेष में चलनेवाला हो। गृहस्थ या सन्न्यस्त हो, संस्था को इससे क्या ? यदि उसके उद्देश्यों में उसके उस स्वरूप से कोई बाधा न पड़ती हो।

जब कि यह सर्वमान्य प्रथा है तब ऐसी स्थिति में किसी धर्माचार्य की अध्यक्षता में असार्वजनिकता का ही स्वरूप देखना कोई विचारकता नहीं मानी जा सकती।

तेरापन्थ और 'अणुव्रती-संघ' का यह मेल यदि निकटतम संसर्गसे जाना जाय तो सम्भवतः किसी भी विचारक के लिये आनन्द का ही विषय होगा। इस मेलके कारण ही 'अणुव्रती-संघ' को एक अनूठा बल मिल जाता है।

तेरापन्थ एक युग-धर्म है, वह धार्मिक जगत् में आई बुराइयों से परे है, क्योंकि वह उन बुराइयों के विरुद्ध हुई एक क्रान्ति का ही परिणाम है। आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व इसका उद्गम हुआ। यह मठ, मन्दिर, अस्थल, स्थानक आदि किसी भी रूपमें साधु-संघके लिये या धर्म के नाम पर किये जानेवाले अर्थ-संग्रह का विरोधी है। फलस्वरूप तेरापन्थी साधु-संघका एक भी मकान नहीं है न और किसी भी प्रकार का अर्थसंग्रह है। तेरापन्थ मानव जाति के किसी भी वर्ग के अस्पृश्य होने में विश्वास नहीं रखता। वह सामाजिक कार्योंको धर्मका अङ्ग मानकर अपरिवर्तन की शृङ्खला से नहीं जकड़ता। तेरापन्थी साधु-संघ पूर्ण सुसङ्गठित है। वह आदि काल से अपने क्रियाशील व दूरदर्शी आचार्यों के नेतृत्व में एक गतिविधि से कार्य कर रहा है। इसके वर्तमान अधिनेता आचार्य श्री तुलसी हैं जिनके क्रिया-कलापों से आज जन-जन

परिचित है ही। आपके नेतृत्व में लगभग ६४० साधु सध्वियां हैं, जो आपके आदेशानुसार भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में पाद बिहार से घूमते हुए सत्य एवं अहिंसा का प्रसार करते हैं। 'अणुव्रती-संघ' के तेरापन्थ के साथ विवक्षित प्रकार से सम्बन्धित होने का फल होता है कि उसे अनायास ही ६४० साधु साध्वियों का सुशिक्षित और कर्मठ संघ प्रचारार्थ मिल जाता है। इस बल के आधार पर ही यह सोचा जा सकता है कि यह अणुव्रत-योजना अक्षर-बिन्द्यास तक ही सीमित रह जानेवाली नहीं है, इसका भविष्य व्यापक और समुज्ज्वल है।

इत्यादि अन्तर्निहित दृष्टिकोणों से परिचित होने के अनन्तर आशा है, आशंका जैसी कोई भी वस्तु इस धारामें दृष्टिगोचर नहीं होगी प्रत्युत 'अणुव्रती-संघ' के उपयोगी तत्त्व ही आलोचकों को दीख पड़ेंगे।

१५—उचित स्थिति के अनुसार 'संघ-प्रवर्तक' द्वारा उसके नेतृत्व की अन्य व्यवस्था भी की जा सकेगी।

पूर्ववर्ती धारा के अनुसार संघ सम्बन्धी सारे अधिकार संस्थापक एवं उनकी उत्तराधिकार-परम्परा के अधिकृत रहते हैं।

इसमें कोई भी स्वत्व की भावना नहीं। मात्र कार्यव्यवस्था का ही दृष्टिकोण है, यह इस धारा से स्पष्ट हो जाता है। इस धारा का निर्माण आचार्यवर के इस दृष्टिकोण के आधार पर हुआ है कि मेरा यह आग्रह नहीं कि अणुव्रती-संघ पर मेरी या मेरे उत्तरवर्ती आचार्यों की ही अध्यक्षता रहे। इस संगठन का प्रसार हो, इसमें सजीवता रहे, इस आशय से अभी मैं इसकी आवश्यकता समझता हूं। यदि भविष्य में देश के अन्यान्य उत्कृष्ट व्यक्ति इसमें आयें और यह माना गया कि अब यह संघ अणुव्रतियों के ही पारम्परिक अनुशासन में सफलतापूर्वक चल सकेगा तो इसके संचालन की कोई भी सामयिक प्रणाली निर्धारित की जा सकेगी।

इस प्रकार विधान सम्बन्धी अनेकों सामाधान इस धारामें प्रस्फुटित हो जाते हैं और इस संगठन में स्व-वाद व सम्प्रदायवाद की कोई गन्ध नहीं रह जाती।

अणुव्रत

१—अहिंसा-अणुव्रत

“सन्वेसि जीवियं पियं”—प्राणीमात्र को जीवन प्रिय है। गृहस्थ अपने जीवन-यापनके लिये जो नाना हिंसा करते हैं, वह उनकी दुर्बलता, अशक्तता है। अहिंसा ही धर्म है, हिंसा नहीं, चाहे वह अनिवार्य कोटि की ही क्यों न हो। अहिंसा ही जीवन का सिद्धान्त होना चाहिए। मैं अधिक-से-अधिक अहिंसक बनूँ—इस भावनाको लिए अणुव्रती स्थूल-सूक्ष्म सब हिंसा से बचने के लिये प्रतिक्षण सचेष्ट रहे।

इस सम्बन्ध में निम्नाङ्कित नियमों का पालन अणुव्रती के लिए अनिवार्य है।—

१—चलने फिरनेवाले निरापराध प्राणी का संकल्प, लक्ष्य या विधिपूर्वक घात न करना।

भारतीय विचार-धाराके अनुसार मुख्यतः दो प्रकारके प्राणी माने गये हैं—स्थावर और जंगम। स्थावर जिनके एक इन्द्रिय होती है, स्वयं चल फिर नहीं सकते, पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि। दो इन्द्रियसे लेकर पाँच इन्द्रिय तकके प्राणी जंगम हैं, ये स्वयं गतिशील होते हैं। द्वीन्द्रिय—लट, सीप, कृमि आदि। त्रीन्द्रिय—चींटी, मकोड़ा, जू आदि। चतुरीन्द्रिय—मकली, मच्छर, टिड्डी, बिच्छू आदि। पंचेन्द्रिय—गाय, भैंस, मछली, सर्प, मोर, कबूतर, मनुष्य आदि। स्थावर प्राणियोंकी अनावश्यक हिंसासे बचते रहना अणुव्रतीका ध्येय होगा। यह इस पुस्तक की पृष्ठ-भूमिमें बताया जा चुका है। यह नियम चलने-फिरने वाले निरपराध प्राणीकी संकल्प, लक्ष्य और विधिपूर्वककी जानेवाली हिंसाका निरोध करता है। अहिंसाका पूर्ण रूप तो यह है कि अपराधीके

प्रति भी प्रति-प्रहार न किया जाय किन्तु अणुव्रती एक साधक है, उसके जीवनमें अहिंसाकी अपूर्णता है।

हिंसा तीन प्रकारकी होती है : आरम्भजा, विरोधजा और संकल्पजा। आरम्भजा जो कृषि, वाणिज्य, गृह-निर्माण आदि प्रवृत्तियोंमें होती है। विरोधजा जो शत्रु या प्रतिपक्षीके प्रतिकार स्वरूपकी जाती है। संकल्पजा जो विधि और लक्ष्यपूर्वक आक्रान्ता होकर की जाती है। उक्त नियम संकल्पजा हिंसाका ही निषेध है, वह भी द्वीन्द्रियसे मनुष्य तक।

नियमकी स्पष्ट उपयोगिता यह है कि अणुव्रती अकारण किसी जंगम प्राणीका बध नहीं कर सकता, वह हर प्रकारकी अनावश्यक हिंसासे बच जाता है।

मूल नियममें संकल्प, लक्ष्य और विधि ये तीन शब्द जोड़ देनेका तात्पर्य है,। संकल्पजा हिंसामें, मैं हिंसा करूँ, ऐसा संकल्पजा होता है, अमुक प्रणीकी हत्या करूँ, ऐसा लक्ष्य होता है, अमुक प्रकारसे हिंसा करूँ ऐसा विधिका निरधारण होता है।

यद्यपि विरोधजा हिंसामें भी ये तीनों प्रकार होते हैं तथापि निरपराधी शब्द जोड़ देनेसे उक्त नियमसे उसका सम्बन्ध अलग हो जाता है। इसी तरह संकल्प, लक्ष्य और विधि, इन शब्दोंके प्रयोगसे आरम्भजा हिंसा इस नियमकी मर्यादासे दूर रह जाती है। आगेके नियम आरम्भजा आदि हिंसाकी मर्यादा बांधेंगे। यह तो असम्भव है कि गृहस्थ मनुष्य आरम्भजा विरोधजा हिंसासे पूर्णतः बच सके। किन्तु वहाँ भी अनावश्यक और आवश्यकका विवेक अपेक्षित है। आगे के नियम, विशेषतः उक्त दो हिंसायें जहाँतक अनावश्यक और अनैतिक हैं निरोध करते हैं।

२—किसी व्यक्ति विशेष या दल विशेषकी हत्या करने का उद्देश्य रखनेवाले गुट, दल, या संस्थाका सदस्य न होना एवं उनके कार्योंमें भाग न लेना।

आजके सभ्य समाजमें हत्या एक पाशविक वृत्ति मानी जा चुकी है फिर भी मानव समाजसे अभी तक इसका आत्यन्तिक लोप नहीं हुआ है। निकट भूतके इतिहासमें भी इस भूबलय पर अनेकों हत्या-पूर्ण घटनाएँ घट चुकी हैं, महात्मा गान्धीकी मृत्यु-घटना इस विषयका ज्वलन्त उदाहरण है। इस प्रकारकी नृशंस प्रवृत्तियोंसे इस नियमके अनुसार अणुव्रतीको सर्वथा परे रहना चाहिए। वह कोई भी कायिक और वाचिक योग तत्सम्बन्धी षड्यंत्रोंमें नहीं दे सकेगा। ऐसे तो 'अणुव्रती-संघ' के अन्यान्य नियमोंकी उत्कृष्टताके कारण अणुव्रतीका आदर्श स्वतः ऐसा हो जाता है कि वह हत्या जैसे निन्दनीय कार्यमें प्रवृत्त हो ही नहीं सकता तथापि सामान्य और विशेष सभी नियमों का उल्लेख आवश्यक है, ऐसा मानकर ही नियमावलीमें इसे स्वतंत्र नियमका स्थान दिया गया है। ऐसा आवश्यक भी था, दो चार विशेष नियमों के भाव, व्याख्या और दृष्टिकोणमें वैसे तो अन्य सारे सामान्य नियम अन्तर्गर्भित किये जा सकते हैं, किन्तु ऐसे सर्वजनोपयोगी नियमोंमें "एकाक्षर लाघनेन पुत्र जन्मोत्सव" के आदर्शको उपस्थित कर सर्वसामान्यताको तर्कशास्त्रका अभ्यास नहीं कराना था, जो सबके लिये असम्भव भी है। नियमोंकी रचनामें सरलता और स्पष्टताका ध्यान विशेष आवश्यक था। अतः उसे आदिसे अन्ततक निभाना अनिवार्य हुआ। दूसरा यह भी एक अनुपेक्ष्य दृष्टिकोण नियमोंकी रचनाके सम्बन्ध में रहा है। पृथक् २ बुराइयोंके निषेधक यथोचित पृथक् २ नियम ही हों ताकि आबाल वृद्ध उन बुराइयोंको स्पष्ट समझ सकें और एक-एकको छोड़नेके लिये प्रयत्नशील रह सकें। अतः अथसे इति तकके नियमोंमें और भी जहाँ-जहाँ इस प्रकारके नियम हैं वे संख्यापूरक न होकर आवश्यकता पूर्वक ही हैं।

उदाहरणार्थ यह नियम नं० २, भावार्थ और शब्दार्थ तथा पहले नियम में समाया जा सकता है तथापि मानव-हत्या जैसी बुराईकी ओर स्पष्ट इङ्गित हो, जन २ में इस बुराईके प्रति घृणा उत्पन्न हो इसलिये इसे स्वतंत्र

नियमका रूप दिया गया है। इसी दृष्टिकोणके अनुसार 'शिकार' आदिके आगे बताये जानेवाले नियम भी संकल्पी हिंसाके कारणसे प्रथम अणुव्रतके प्रथम नियममें ही समा सकते थे किन्तु उन्हें स्वतंत्र रूप दिया गया है।

३—स्वदेशसे बाहर बने वस्त्रोंको पहनने और ओढ़नेके व्यवहारमें न लाना।

स्पष्टीकरण—विशेष परिस्थिति एवं विदेशवासमें उपरोक्त नियम लागू नहीं हैं।

यह पूर्वके प्रसंगोंमें बतलाया जा चुका है कि यह संगठन केवल आध्यात्मिक भित्तिपर अवस्थित है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है—'स्व' और 'पर' का यह भेद कैसा? आध्यात्मिकता तो जब 'स्व' और 'पर' के बीचकी खाईको मिटानेवाली है, वहां इस भेद-रेखाका निर्माण कैसा? यह सच है, आध्यात्मवाद 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के निश्चल आदर्शकी उपेक्षा नहीं कर सकता, वह तो प्राणीवर्गमें समुद्भूत समस्त विभेदोंका मूलोच्छेद ही करना चाहता है।

उक्त नियममें देशके सम्बन्धमें 'स्व' शब्दको ही व्यवहृत किया गया है, किन्तु 'स्व' की हेयता या उपादेयताके विधानमें 'पर' की हेयता या उपादेयताका अर्थ प्रतिध्वनित हो ही जाता है। अस्तु, नियमका दृष्टिकोण यहाँ 'स्व' शब्दमें बाह्यस्थित न होकर अन्तःस्थित है। वहां इस नियमसे आध्यात्मिकता ही परिपुष्ट होती है। इसके साथ यह तो स्वाभाविक है ही कि उस पल्लवित आध्यात्मिकताका लाभसामाजिक और राष्ट्रीय आदि सभी क्षेत्रोंको मिलता रहे, उसके प्रकाशसे जीवनके अन्यान्य सभी पहलू प्रकाशित होते रहें। स्पष्ट शब्दोंमें हम इस प्रकार कह सकते हैं—स्वदेशसे बाहर बने वस्त्रोंका निषेध मुख्यतः अहिंसा और सादगीके दृष्टिकोणको लिये हुए हैं। वस्त्र-विशेषकी निष्पत्तिके लिये संसारमें लाखों मीलें चलती होंगी जहां बड़ी-से-बड़ी हिंसा अनिवार्य है। जो भी गृहस्थ उन सब मीलेंके वस्त्रका परित्याग नहीं करता

है वह किसी-न-किसी रूपमें उस हिंसासे सम्बन्धित है ही। इस नियमके अनुसार वस्त्र विशेषके लिये होनेवाली विश्वभरकी हिंसासे अणुव्रतीका सार्वधिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है अर्थात् वह इस विषयमें केवल अपने देशमें होनेवाली हिंसासे ही सम्बन्धित रह जाता है। इस सम्बन्धमें अनेकों प्रश्न उठ सकते हैं जैसे—वस्त्र विशेषके लिये ही यह विधान क्यों, —विदेश-निर्मित अन्य वस्तुओं के उपयोग में व्यक्ति भी तज्जन्य हिंसा से सम्बन्धित होता ही है। इसका समुचित समाधान यही है, अवश्य हिंसा से सम्बन्ध तोड़ना अणुव्रती का परम लक्ष्य है किन्तु माननीय स्वाभाविक दुर्बलता के कारण व्यवहार्य और अव्यवहार्य का विवेक रखना ही पड़ता है। अतः नियम-निर्धारण के समय बहुत प्रकार की तर्क-वितर्क के बाद आज की स्थितिमें वस्त्र विशेष का नियम ही सुसाध्य माना गया। क्योंकि निकट भूतमें राष्ट्रीय भावना के अधिक प्रसारित होने के कारण विषय अधिक कष्टसाध्य नहीं रह गया था।

कुछ विचारकों का यह भी अनुरोध रहा कि अहिंसा के दृष्टिकोण को सुदृढ़ करने के लिये तो आवश्यक है अणुव्रती के लिए मिलमात्र के वस्त्र का निषेध हो। कम-से-कम हिंसापरक वस्त्र, खादी से बढ़कर दूसरा नहीं, अतः उक्त प्रकार का नियम होने से अतिरिक्त वस्त्र का स्वयमेव परिहार हो जायेगा।

सुभाष अवश्य ध्यान देने जैसा था, किन्तु अणुव्रतों का प्रसार जन-जन में जिस व्यापकता से करने का लक्ष्य था, उसे ध्यान में रखते हुए यह नियम कठोरतम हो जाता। खादी मात्रमें सन्तोष कोई छोटा बड़ा वर्ग कर सकता है और वह भी अनुकूल स्थितियों में, किन्तु सर्व-साधारण से यह आशा नहीं की जा सकती। दूसरे यन्त्र बिकास की ओर जिस प्रकार प्रत्येक देश अहंपूर्वक बढ़ने में व्यस्त हैं वह देखते हुए उक्त प्रकार का नियम निकट भविष्य में ही नितान्त अव्यवहार्य भी हो सकता था।

‘स्वदेश’ शब्द से यहाँ केवल भारतवर्ष का ही तात्पर्य नहीं। कोई अणुव्रती यदि पाकिस्तानवासी है तो उसके लिये भी उक्त नियम अपने देशके अर्थमें उसी प्रकार लागू है, इसी प्रकार अन्य सब देशवासियों के। इससे अपने आप यह सूचित हो जाता है कि नियमोक्त स्वदेश शब्द ‘स्व’ और ‘पर’ का भेद-वर्धक नहीं अपितु विशुद्ध आध्यात्मिकतापूर्वक व्यक्ति के हिंसा क्षेत्र को मर्यादित करने वाला है।

व्यक्ति की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को और लालसाओं को सीमित करना, सन्तोष और सादगीको जीवन में उतारना, ये तो अन्य दृष्टिकोण भी इस नियम के मूल में रहे हैं। विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का उपयोग अधिकतर फैशन के लिये होता है। खरीददार सर्वप्रथम यह देखता है कि मैं वही वस्त्र खरीदूँ जिसका सुन्दर रङ्ग और सुन्दरतम डिजाइन हो। इस नियम के अनुसार ‘अणुव्रती’ को स्वदेश निष्पन्न वस्त्रमें ही सन्तोष करना होगा चाहे वह विदेशोत्पन्न वस्त्र के समान आकर्षक न भी हो। अतः यह नियम आध्यात्मिक तथ्यको लिये हुए सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रमें भी कितना उपयोगी है यह अपने आप सुस्पष्ट है।

स्पष्टीकरण

विशेष परिस्थिति और विदेशवास इन दो स्थितियोंका यहाँ उल्लेख किया गया है।

विशेष परिस्थिति—

१—कोई राष्ट्रीय संकट काल, जब कि देशकी वस्त्र-समस्या बाहर से आये वस्त्रसे ही हल होती हो, देशोत्पन्न वस्त्र सुलभ ही न हो।

२—आकस्मिक आवश्यकता—जैसे यात्रामें; जब कि अचानक शीतादि का प्रकोप हो गया हो, अन्य साधन न हो।

३—आकस्मिक बीमारी—जब कि अन्य साधन का अभाव हो आदि।

विदेशास—विदेशवास में उक्त नियम लागू नहीं होता ।

यह स्पष्टीकरण भी अस्वाभाविक लगे ऐसा नहीं है । एक भारतीय रहे अमेरिकामें, उपयोग करना पड़े उसे भारतीय वस्त्रका—यह असाध्य नहीं तो दुसाध्य अवश्य है ।

इस विषय में यह प्रश्न भी बहुधा आचार्यवर के समक्ष आया करता है कि जिस व्यक्तिने अपने विदेशवास की स्थितिमें विदेशी वस्त्र बनवाये, अपने देशमें आनेके बाद उन वस्त्रोंका उपयोग करने के लिये वह स्वतंत्र है या नहीं ? प्रश्नका समाधान यही है, कोई अणुव्रती, वस्त्रोंका उपयोग स्वदेश में भी होता रहेगा इस दृष्टिकोण से, अधिक वस्त्र बनवाने में लेशमात्र भी स्वतंत्र नहीं है, आवश्यकतवश जितने वस्त्र वह बनवा चुका है उन वस्त्रोंका उपयोग वह कहीं भी करे, नियम बाधक नहीं है ।

स्वदेश की मर्यादा—

जिस देशमें जो व्यक्ति रहता है उस एक राजसत्तासे अनुशासित देश उस व्यक्तिके लिये स्वदेश है । एक व्यक्ति जो एक देशको छोड़कर दूसरे देशके नागरिक अधिकारों को प्राप्त कर लेता है तब से वही देश उसके लिये स्वदेश है । पूर्वकालिक स्वदेश उसके लिए विदेश हो जाता है ।

भौगोलिक सीमाके घटाव और बढ़ाव के साथ भी स्वदेश की मर्यादा सम्बन्धित रहेगी । अर्थात् कोई नया देश स्वराज-सत्ता के अनुशासन में किसी कारण से आता है तो स्वदेश की परिधि बढ़ेगी, यदि स्थितिबश किसी अन्य देशमें मिल जाता है तो स्वदेश की सीमा घट जायेगी ।

स्वदेश से बाहर बने वस्त्रोंका परित्याग है अतः जो वस्त्र विदेशी सूतसे स्वदेशमें बनता है उसके विषय में उक्त नियम निषेधक नहीं है । इसी प्रकार जो वस्त्र स्वदेशी सूतसे विदेश में बनकर आता है वह विदेशी की कोटिमें ही माना गया है ।

छाता वस्त्रोंमें नहीं माना गया है।

४—रेशमी व तत्प्रकार के हिंसाजन्य वस्त्रोंको पहनने और ओढ़ने के व्यवहार में न लाना।

स्पष्टीकरण—व्रत-ग्रहण के पूर्वकालिक वस्त्रोंके विषय में उक्त दोनों नियम बाधक नहीं हैं।

इस नियम के मूलमें दो दृष्टिकोण हैं—अहिंसा और सादगी। यह सर्वविदित तत्त्व है कि रेशम कीड़ोंसे निष्पन्न होता है और अत्यन्त हिंसापरक है। यद्यपि रेशम का व्यवहार सभी सभ्य समाजों ने अपना रखा है और वह भी लम्बी अवधिसे तब भी समाजमें धनी-मानी एवं प्रतिष्ठित जन ही इसका अधिक प्रयोग करते हैं। रेशम का प्रयोग समाज में अनैतिक नहीं माना जाता प्रत्युत मांगलिक कार्योंमें उसका अधिक उपयोग होता देखा जाता है। अस्तु, आजतक की जो भी स्थिति रही हो अब भी हम इस विषय में कुछ भी सोचने के लिये स्वतन्त्र हैं। अहिंसा की दृष्टिसे यदि हम विचार करते हैं, हमें यह मानना होता है कि प्राणी जगत् के बीच मानव समाज सदा ही स्वार्थ-परक रहा है, वह प्राणीवाद पर न चलकर मानववाद पर ही चल रहा है। वह पशुओं की रक्षा करता है अपने स्वार्थ के लिये, उनका बध करता है अपने स्वार्थके लिए, अपने जीवनको अपना जन्मसिद्ध अधिकार माननेवाला मानव आमिष आहार जैसी हिंसक वृत्तियोंको, जिनमें असंख्य स्थूल प्राणियोंका प्राणापहरण होता है, आवश्यकताकी मर्यादा में घसीट कर नैतिकताकी मुद्रासे अङ्कित कर देता है। यहाँ आकर तो उसकी स्वार्थपरताकी हद्द ही हो जाती है, जब कि वह अपने तुच्छतम स्वार्थके लिये भी अगणित जंगम प्राणियोंके विनाशको आवश्यक और व्यावहारिक मान बैठता है। रेशमका भी एक ऐसा ही प्रसङ्ग है। रेशम मानव समाजके लिये जितना एक सुखद सामग्रीके रूपमें माना जा सकता है, उतना आवश्यक सामग्रीके रूपमें नहीं। यह ठीक है कि वह कोमलता, भव्यता आदि गुणोंसे वस्त्रोपयोगी सामग्रीमें सर्वोत्कृष्ट है,

किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि मानव जातिके लिये इसकी अनिवार्यता है। कतिपय पाश्चात्य देशों में परो को भी सुन्दरताका प्रतीक मान लिया गया है। लाखों पक्षी मानव-समाजकी सौंदर्य-पीपासा पर बलिदान होते हैं। पढ़नेमें आया है कि इङ्गलैंडके एक व्यापारीने एक वर्षमें तीस लाख उड़ने वाले पक्षियोंका केवल परोके लिए बध किया। फ्रान्समें तो उस प्रकारके पक्षियोंकी नसल ही नष्ट हो गई है। मानव अपने नगण्य स्वार्थके लिये कितना निर्दय हो जाता है !

इत्यादि दृष्टिकोणोंके आधार पर यह आवश्यक माना गया कि इस दिशामें अणुव्रती पहले कुछ करें। यह सच है कि असीम कालसे चलने वाला यह रेशमका व्यवहार एकाएक समाजसे दूर नहीं हो सकता, फिर भी समाजमें एक अहिंसात्मक दृष्टिकोण तो पैदा होगा ही। सम्भवतः वह किसी समय अनुकूल स्थिति पाकर पूर्णतः विकसित भी हो सके।

रेशम का परित्याग सादगी का परिपोषक तो निस्सन्देह है ही। अहिंसा जिसके जीवन का गुण है वह अणुव्रती यदि रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित रहता है तो यह कुछ कम शोभाजनक होता है। आवश्यकताओं को कम करने में आज के संसार की अनेक समस्याओं का हल है। आजका भौतिक दृष्टिकोण है—‘आवश्यकता आविष्कार की जननी है।’ पर आर्ष दृष्टिकोण बताता है कि सुख आवश्यकताओं को कम करने में है, बढ़ाने में नहीं। आवश्यकता बढ़ी और आविष्कार बढ़े तो सुख और शान्ति की दृष्टि से कुछ नहीं बढ़ा। एक व्यक्ति को १००) की आवश्यकता है, यदि उसे ८०) मिल गए तो वह २०) के लिये चिन्तित है, उसी व्यक्ति को यदि अकस्मात् ६००) मिल गये उसे कुछ सुख नहीं मिलेगा, यदि उसकी आवश्यकता बढ़कर १०००) की हो गई है। यही कारण है कि मनुष्य सुखके लिये दौड़ता है पर सच्चे सुख तक पहुंचता नहीं क्योंकि उक्त भौतिक दृष्टिकोण के अनुसार आविष्कार से पहले आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। इत्यादि दृष्टियों से रेशम-परिहार का यह नियम विशेष उपयोगी माना गया है।

स्पष्टीकरण

व्रत-ग्रहण से पूर्व संग्रहीत वस्त्रोंके उपयोग में नियम बाधक नहीं है। यह स्पष्टीकरण नियम नं० ३ और ४ दोनों पर लागू होता है अर्थात् विदेशी और रेशमी दोनों प्रकार के पूर्व संग्रहीत वस्त्रों के उपयोग में नियम अबाधकता बतलाता है।

रेशम में यहाँ कीड़ों से उत्पन्न होनेवाला रेशम ही ग्रहण किया गया है, उससे रेशमी कहे जानेवाले अन्य पदार्थ निष्पन्न वस्त्र नियम की परिधि में नहीं आते।

कुछ वस्त्र रेशमी नहीं कहे जाते फिर भी रेशम की तरह ही कीड़ों से बनते हैं। वे वस्त्र इस नियम की परिधि में आ जाते हैं, उदाहरणार्थ—मूंगा-सूता, ईरण्डी आदि।

कुछ वस्त्र मूलतः सूती होते हैं, उनके किनारोंपर कुछ एक तार रेशमी होते हैं, वे वस्त्र रेशमी नहीं माने गये हैं।

५—किसी भी व्यक्तिको 'अस्पृश्य' मानकर उसका तिरस्कार न करना।

जाति मात्र सामाजिक कल्पना है अतः अतात्त्विक है। अस्पृश्यता का आरोप कृत्रिम है। सबल वर्गका साधारण वर्गके प्रति अहंकार और घृणा कर्म-बंधनके कारण है। अणुव्रती किसी जाति विशेषके प्रति अस्पृश्य होनेका विश्वास न रखें, किसी व्यक्ति विशेषको भी जातीयतासे अस्पृश्य न माने। किसी भी व्यक्तिका जाति कारणसे बाचिक और कायिक तिरस्कार करनेका तो उसे त्याग ही है।

स्पष्टीकरण

किसी व्यक्तिकी शारीरिक या वेषभूषा जन्य गन्दगीके लक्ष्यसे उसे सभ्यतापूर्वक दूर होनेके लिये कह देना पड़ता हो व स्वयं दूर हो जाना पड़ता हो तो तिरस्कारकी कोटिमें नहीं होगा। क्योंकि वह असहयोग चाहे हरिजनके साथ ही क्यों न हो जातीयताको लेकर नहीं है।

६ - वृहत् जीमनवार न करना और यदि राजकीय नियम हो तो उसका उल्लंघन न करना।

स्पष्टीकरण

जहाँ बाप दादेके परिवारके अतिरिक्त २०० से अधिक व्यक्ति भोज नार्थ सम्मिलित हों, वह वृहत् जीमनवार माना गया है।

कोई प्रथा बहुधा किसी अच्छे उद्देश्यको लेकर प्रारम्भ होती है पर आगे जाकर नाना दोषोंसे परिपूर्ण होती हुई समाजके लिये भारतभूत हो जाती है। जीमनवार भी एक ऐसी ही प्रथा है। यह समझमें आता है कि इस प्रथाका उद्गम अवश्य पारस्परिक सहयोग और प्रेमकी अभिवृद्धिके लिये ही हुआ होगा, किन्तु आज वह तत्त्व गौण देखा जाता है और वह जीमनवार केवल आडम्बर और ऐश्वर्यका ही सूचक देखनेमें आता है। प्रत्येक धनी-मानी व्यक्ति अपने सजातिबोंसे बड़ा और शानदार जीमनवार करके समाजमें वाह वाही लेना चाहता है। उन इने-गिने धनी-मानी व्यक्तियोंकी उस प्रवृत्तिका भार सर्व-साधारण पर पड़ता है। उन्हें भी जन्म-विवाह-मृत्युसे सम्बन्धित सारे जीमनवार अपनी स्थितिसे बढ़कर करने पड़ते हैं। यदि किसी सिधी प्रकार सम्भव न हो तो कर्ज लेकर करने पड़ते हैं और इसका दुष्परिणाम प्रायः सभी समाजोंमें देखनेको मिलता है। बहुत से व्यक्ति इस प्रथाके दुष्परिणामको समझ भी चुके हैं तब भी सामाजिक शृंखलाओंसे जकड़े रहनेके कारण उन्हें भी वाह वाहीकी चक्कीमें उसी तरह ही पिस जाना पड़ता है।

पहले वृहत् जीमनवारों के लिये बहुत समाजोंमें पंचायतोंके कुछ नियंत्रण भी रहा करते थे। पर आज वे बंधन भी शिथिल पड़ गये और व्यक्ति-व्यक्ति स्वतन्त्र है। अन्नाभावके इस युगमें इन जीमनवारों पर राजकीय नियंत्रण आये, आश्चर्य है, तब भी जनता का मोह इन मिठाइयों से नहीं टूटा। अब भी वह आये प्रसङ्गमें खाने और खिलाने पर डटी रहती है। सुना है, राज्य-नियंत्रित पदार्थोंको बाद देकर दश-दश हजार व्यक्तियों तक के जीमनवार आज की अन्न

समस्या को जटिल करनेमें कितने सफल हुए हैं यह प्रत्येक व्यक्ति का परिचित विषय है।

क्या यह किसी प्रकार अविवेकसे प्रथम कक्षाकी बात मानी जा सकती है, जब कि मनुष्य प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये प्रत्यक्ष प्रतिष्ठा घटाने के मार्ग पर अग्रसर होता है। देखा गया है उन गैर-कानूनी जीमनवारों में राजकीय अधिकारियों द्वारा कभी-कभी इस प्रकार विडम्बना हुआ करती है जिसकी कोई हद नहीं। जीमनवार हो रहा है, पुलिस आती है, बीच ही में कुछ भागते हैं, कुछ छिपते हैं, कुछ पकड़े जाते हैं। मिठाइयाँ तोली जाती हैं। अधिक हुई तो नीलाम की जाती हैं। अन्तमें प्रतिष्ठा और सहस्रों रुपयोंकी आहुतिके बाद कहीं उन यमदूतों से छुटकारा मिलता है। यह है जीमनवारका मंगलोत्सव जिसमें शत-शत अमङ्गल और विपदायें आदिसे अन्त तक शर पर मंडराती ही रहती हैं।

अणुव्रती आदर्शकी ओर बढ़नेवाला प्राणी है। वह इस विकृत प्रथा को प्रोत्साहन नहीं देगा चाहे उसे इस अन्धानुकरण नहीं करनेके फल-स्वरूप अपनी बिरादरी (समाज) का आलोचना-पात्र भी बनना पड़े। वह अपने आदर्श पर अटल रहेगा।

‘अणुव्रती-संघ’का यह नियम समाज-सुधारकी दिशामें क्रान्ति करने-वाला होगा। एक अणुव्रतीका प्रभाव उसके पारिवारिक क्षेत्रमें और बहुत अणुव्रतियोंका प्रभाव सामाजिक क्षेत्रमें बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकता है। ऐसा अनुभवमें भी आया है कि अणुव्रतियोंके असहयोगके कारण अर्थात् वृहत् जीमनवारमें सम्मिलित न होनेके कारण उनके अपने अपने प्रभावित क्षेत्रमें वृहत् जीमनवार लघु और मर्यादित होने लगे हैं। यह भी देखा जाता है कि पारस्परिक आलोचना-प्रत्यालोचनासे वृहत् जीमनवारके दोष भी सर्वसाधारणके ध्यानमें आ रहे हैं और वृहत् जीमनवार न करनेका पक्ष प्रबल होता जा रहा है। यह हर्षका विषय है और नियमकी सफलता है। आवश्यक यही है कि अणुव्रती सर्वसाधारणकी ओर न झुकें, अपने आदर्श पर दृढ़ रहें। यदि उनका

आदश वास्तविक है तो अवश्य सर्वसाधारण जनता उनकी ओर झुकेगी।

‘अणुव्रती-संघ’ का यह नियम सामाजिक पहलुओंको छूता है। नियमोंकी रचना वस्तुतः सार्वदेशिक है। वह मानव-जीवनके प्रत्येक पहलुको छूती है और उनमें धंसी हुई बुराइयोंका निराकरण करती है। भारतीय मनुष्योंका सामाजिक जीवन विशेषतः विकृत हुआ प्रतीत होता है। अतः उनमें सुधार लानेके लिये ऐसे नियमोंकी आवश्यकता मानी गई है। नियमावलोकमें ऐसे और भी अनेकों नियम हैं और यथा-सम्भव यथासमय बनते भी रहेंगे।

कुछ लोगोंकी जिज्ञासा रहा करती है कि विशुद्ध आध्यात्मिक उद्देश्य-वाले संघके नियमोंमें ये समाज सुधारके नियम कैसे ? यहाँ तो व्यक्ति के आत्म-सुधार या आत्मोत्थानकी ही चिन्ता होनी चाहिए, समाजकी चिन्ता सामाजिक कर्णधार करेंगे।

वस्तुस्थिति यह है कि बहुधा व्यक्ति और समाजको एकान्ततः भिन्न मान लिया जाता है, पर तत्त्वतः यह नहीं है। व्यक्तियोंका ही समाज है और समाजका ही अंग व्यक्ति है। अतः व्यक्ति-सुधार स्वतः समाज-सुधार हो ही जाता है। दूसरी बात रहती है आध्यात्मिकता और सामाजिकता की। आध्यात्मिकता और सामाजिकता कई दृष्टिकोणोंसे भिन्न होती हुई भी परस्पर नितान्त निरपेक्ष नहीं है। अनुकूल सामाजिकतामें ही आध्यात्मिकताका समिष्ट रूपमें विकास हो सकता है। आजके मनुष्यमें आध्यात्मिकताका पर्याप्त विकास न हो सकनेका एक कारण आज की सामाजिकता भी है। आज मनुष्यकी श्रेष्ठता धनमें ही कल्पित है। बिना पर्याप्त धन-संग्रहके समाज में मनुष्यका जीना भी एक समस्या बन जाता है। बिना पूरा दहेज दिये, बिना बड़े जमीनवार किये लड़कियोंको व्याहने वाला कौन ? बिना पूरा गहना दिखाये लड़केको लड़की देनेवाला कौन ? बस! मनुष्य इस प्रकारकी अनेकों स्थितियोंका दास होकर अर्थार्जनके ही पीछे पड़ता है। यदि ऐसा न करे तो उसका

कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं रह जाता। बदनसीबीसे यदि किसीके दो चार छव लड़कियां हो जाती हैं तो बस उसके जीवनका उद्देश्य यहाँ ही समाप्त हो जाता है कि वह किसी प्रकार मर पचकर उन लड़कियोंको ठिकाने लगा दे। सामाजिक बहुखर्चीका ही कारण है कि धर्म-प्रधान भारतवर्षकी सुसंस्कृत और आर्य मानी जानेवाली जातियोंमें लड़कियों को जन्मते ही मार देनेका कुकृत्य चला। आज भी सामाजिक प्रथाओंसे बोझित मनुष्य आध्यात्मिकताको ताक पर रखकर हिंसा, असत्य और चौर्यके सारे रास्ते देख लेनेको विवश होता है। अब सोचें, समाजस्थ प्राणी आध्यात्मिकताकी ओर कैसे झुकें ? इसलिये ही आध्यात्मिकताके विकासके लिये आध्यात्मिक उपायोंसे ही सामाजिकताका निर्दोषीकरण अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टिकोणको ध्यानमें रखते हुए ही 'अणुव्रती संघ' में सामाजिकतासे सम्बन्धित नियमोंको विशेष प्रश्रय दिया गया है। यथासम्भव भविष्यमें और भी नियम बढ़ाये जा सकेंगे। निर्धारित नियम विशुद्ध आध्यात्मिक पद्धतिसे सामाजिक दुष्प्रथाओंको दूर कर मनुष्यके जीवनको उन्नत करने वाले हैं।

स्पष्टीकरण

जब तक जीमनवार विषयक कोई राजकीय नियम है तब तक उसका उल्लंघन अणुव्रतीके लिये वर्जनीय है।

राजकीय कोई प्रतिबन्ध न हो तब यह बाप दादेके परिवारके अतिरिक्त दो सौ व्यक्तियोंसे अधिकका निषेध करनेवाला नियम लागू होगा।

यदि किसी व्यक्ति विशेषको राजकीय आज्ञा प्राप्त हो तब उस स्थितिमें भी बाप दादेके परिवारके अतिरिक्त २०० व्यक्तियोंका निषेध करनेवाला नियम लागू होगा।

जो अणुव्रती अपने घरमें सर्वे सर्वा नहीं है अर्थात् माता-पिता-भाई आदिके अनुशासनमें है, यदि वे माता पिता आदि किसी भी प्रकारका जीमनवार करते हैं, अणुव्रती उसका उत्तरदायी नहीं है बशर्ते कि वह

उसमें भोजनार्थ सम्मिलित न हो। जो अणुव्रती अपने घरमें सर्वसर्वा है—सब कार्योंमें उसका आदेश चलता है वह घरवालोंका नाम लेकर अनुत्तरदायी नहीं हो सकता अर्थात् उसके यहाँ यदि वृहत् जीमनवार होगा तो उसका उत्तरदायी वही माना जायेगा। यदि ऐसी स्थिति हो कि अन्य विषयोंमें उसके आदेश मान्य होते हों परइस विषयमें छोटे भाई व अन्य पारिवारिक आग्रहपूर्वक वृहत् जीमनवार करते हों तो वह उत्तरदायी नहीं बशर्ते कि वह तत्सम्बन्धी किसी कार्य-क्रममें भाग न ले अर्थात् यदि जीमनवार विवाहके सम्बन्धसे है तो वह विवाह सम्बन्धी किसी कार्यमें भाग न ले।

जैसे कि बहुतसे लोग राज्य-दण्डसे बचनेके लिये एक बड़े जीमन-वारके स्थानपर दो चार जीमनवार नियमानुसार कर देते हैं वैसे अणु-व्रती नहीं कर सकेगा। स्वाभाविक रूपसे उसे दो या चार जीमनवार करने पड़ रहे हैं वह दूसरी बात है।

नियमके अनुसार जीमनवारकी आयोजना जिसनेकी है और तदनुसार ही न्यौते दिये हैं उस जीमनवारमें यदि २-४ व्यक्ति अनायास अधिक हो जाते हैं तो उससे नियम भंग नहीं माना जायेगा।

टी-पार्टी और ऐट होम जीमनवार नहीं माने गये हैं।

पाहुनोंके लिये की गई भोजन-व्यवस्था जीमनवार नहीं मानी गई है बशर्ते कि पाहुने जीमनवारके उपलक्षमें ही न आये हों।

बाप दादेके परिवारका सम्बन्ध जीमनवार करने वालेके बाप दादेसे समझना चाहिये।

जहाँ जीमनवार करनेवाली घरकी मुखिया स्त्री है वहाँ बाप दादेका अर्थ उसके श्वसुर व दादे श्वसुरसे समझना चाहिये।

दादेके परिवारका अर्थ दादे तक व उसके पुत्र पुत्रियों तक ही है न कि उसके (दादेके) भाई बहिनों तक।

७—नियम निषिद्ध जीमनवारमें भोजनार्थ सम्मिलित न होना।

जो राजकीय नियमोंसे निषिद्ध है व वृहत् जीमनवारकी परिभाषा

में आनेवाला है वह नियमनिषिद्ध जीमनवार माना गया है। उक्त प्रकारके भोजन समारोहमें अणुव्रती भोजनार्थ सम्मिलित नहीं हो सकता। इस प्रथाके विषयमें यह एक असहयोग प्रदर्शन है। बहुत कुछ सम्भव है कि इस असहयोगसे जहाँ अणुव्रतीकी अनिवार्य अपेक्षा है, ऐसे बड़े जीमनवार रुक भी जायें। यदि न भी रुके तोभी उसका सम्मिलित न होना अवश्य जीमनवार विषयक चर्चा उपस्थित करेगा और इससे साधारण इस प्रथाकी हेयता उपादेयताको यथावत् समझेंगे। यद्यपि भोजनके अतिरिक्त अन्य उद्देश्योंसे सम्मिलित होना भी उस प्रथाको सीधा सहयोग करना है तथापि सामाजिक सहयोगकी एक साथ पूर्णतः उपेक्षा न करते हुये असहयोगकी मर्यादा भोजन तक ही रखी गई है।

स्पष्टीकरण

अणुव्रती नियमानुसार बड़े जीमनवार में सम्मिलित नहीं होता इसलिये ही यदि जीमनवार की सामग्री उसके घर पर भेजी गई हो तो अणुव्रती उसे न ग्रहण कर सकता है न खा सकता है। स्वाभाविकतया 'हाँती' के रूप में यदि उसके यहाँ वह सामग्री भेजी गई है तो उसके ग्रहण और भोजन में नियम बाधक नहीं है।

विशेष पारिवारिक सम्बन्ध के कारण दूसरे गाँव जानेवाली बारात के साथ यदि अणुव्रती को जाना पड़ता है, यदि बारात व वहाँका जमीनवार अमर्यादित है तो वह वहाँ भोजन करने में तो सम्मिलित हो ही नहीं सकता, साथ-साथ अपने आवास (ढरे) पर उसके उद्देश्यसे भेजी गई सामग्री का उपयोग भी नहीं कर सकता। जीमनवारकी सामग्रीके अतिरिक्त अपनी या कन्या पक्ष की कोई व्यवस्था हो तो वहाँ नियम बाधक नहीं है।

८—विश्वासघात द्वारा किसी के हृदय को चोट न पहुँचाना।

सभी धर्म-शास्त्रों व नीति-शास्त्रोंमें विश्वासघातको महापाप माना गया है और वह उचित भी है। क्योंकि इससे व्यक्तिके हृदय पर एक

मर्मान्तक आघात होता है और वह एक बड़ी हिंसा है। विश्वासघात शब्द आज इतना परिचित हो गया है कि बात २ में एक दूसरे पर विश्वासघात करनेका आरोप लगा ही दिया जाता है। वस्तुस्थिति भी ऐसी है कि तनिक स्वार्थके लिये भी आजका मानव किसीको धोखा देते हुए नहीं हिचकिचाता। 'कहना कुछ' और 'करना कुछ' यह तो आजकलकी व्यवहार्य नीति बन चुकी है। धोखेबाज तो आजके युगका चतुर है। अणुव्रतीका व्यवहार हर विषयमें सरल और सुस्पष्ट होना चाहिए। उसे इस अन्ध-परम्पराके पीछे नहीं चलना है प्रत्युत पारस्परिक व्यवहारमें एक आदर्श उपस्थित करना है।

प्रश्न यह रहता है कि विश्वासघात कहते किसे हैं? उसकी स्पष्ट परिभाषा क्या है? बहुधा किसी आदमीके साथ कोई वादा किया जाता है, विवशतासे वह समय पर नहीं निभाया जाता, क्या यही विश्वासघात है? त्यागके रूपमें विश्वासघातसे कैसे बचा जाये इसके लिये श्री आचार्यवरने इस विषयमें एक स्पष्ट मर्यादा स्थापित कर दी है। उसे समझ लेनेके पश्चात् नियम-पालनमें कोई संदिग्धता नहीं रहती। वह परिभाषा यह है "धोखा देनेकी भावनासे ही किसी के साथ कोई वादा करना और उसे समय पर नहीं निभाना ही इस नियमकी परिधि में आनेवाला विश्वासघात है।"

सामनेवाला व्यक्ति यह निर्णय बहुधा नहीं कर सकता कि यह विवशतासे ही वादेको नहीं निभा रहा है या मुझे धोखा देनेके लिये ही इसने वादा किया था। उसकी दृष्टिमें दोनों ही विश्वासघात हैं। अणुव्रती के लिये इस विषयमें निर्णायक उसकी आत्मा ही है। यदि वस्तुतः उसने वादा धोखा देनेके लिये ही किया था तो यदि प्रतिपक्षी उसे धोखा न भी समझे तो वास्तवमें वह धोखा है और उसमें अणुव्रतीका नियम भङ्ग है। असलियतमें यदि उसकी नीति विश्वासघातकी नहीं थी तो प्रतिपक्षी कुछ भी समझे अणुव्रतीका नियम भङ्ग नहीं होगा। अतः मेरी प्रवृत्तिमें विश्वासघात है या नहीं इसका उत्तर वह अपनी आत्मासे ही ले।

इस स्पष्टीकरणका यह तात्पर्य नहीं है कि अणुव्रती अपनी कर्तव्य-निष्ठाको ही भुला दे। जो बादा अणुव्रती कर चुका है उसे साधारण-सी विवशतामें ही यदि नहीं निभाता है वह अन्य लोगोंकी दृष्टिमें अकर्तव्यनिष्ठ बनता है, उसकी प्रतिष्ठा पर धब्बा आता है अतः जहाँ तक बन सके उसे ऐसा वादा नहीं करना चाहिए जिसे निभा देनेमें उसे सन्देह है। क्योंकि नीति-शास्त्र उत्तम पुरुष उन्हें ही मानता है जो हर प्रकारका बलिदान करके भी अपने बचनको निभाते हैं।

छोटे-छोटे बालकोंको कभी-कभी भुलावा दे दिया जाता है, जैसे तुम्हें अमुक वस्तु लादूँगा या तुम्हें अमुक वस्तु दिखला दूँगा—यह विश्वासघात नहीं माना गया है, किन्तु ऐसा भुलावा देनेकी प्रवृत्ति पुनः २ नहीं रखनी चाहिए। इससे अपने सत्यका आदर्श खण्डित होता है और बच्चा भी भूठ बोलने का आदि होता है।

६—कानूनी या व्यावहारिक दृष्टिसे पशुओंपर ज्यादा भार न लादना।

स्पष्टीकरण

बहुधा थोड़ेसे स्वार्थके लिये मनुष्य पशुओंके विषयमें बेरहम हो जाते हैं और मानो उन्हें बेजान प्राणी मानकर उनपर अमर्यादित भार डाल देते हैं। यह सब मनुष्यकी निर्दयताका सूचक है। इस दिशामें यह नियम आवश्यक और उपयोगी है। अणुव्रतियोंका व्यवहार इस विषयमें अवश्य पथ-प्रदर्शक होगा।

जहाँ जितने मनका कानून है वहाँ उसके मनोसे दो-चार सेर वजन यदि प्रसङ्गवश अधिक हो जाता है जो वस्तुतः कानूनकी दृष्टिमें भी नगण्य है, तो त्यागमें कोई बाधा नहीं समझी जायगी।

तांगे आदिमें जहाँ तीन या चार व्यक्तियोंके सवार होनेका नियम है, अणुव्रती यथाक्रम चौथा और पाँचवां होकर नहीं बैठ सकता, न वह

चार या पांच आदमियोंके साथ ही बैठ सकता है। यदि अणुव्रती नियमानुसार बैठ चुका है और तांगेवाला अपनी इच्छासे फिर किसी चौथे या पांचवेंको बैठाता है तो अणुव्रतीके नियममें कोई बाधा नहीं मानी जायगी।

जहाँ कानून नहीं है वहाँ व्यावहारिक दृष्टि निभानी होगी। व्यावहारिक दृष्टिका तात्पर्य है साधारणतया जो पशु जितने भारके योग्य माना जाता है उस पर उससे अधिक भार न लादना। दूसरे शब्दोंमें जितना भार लादना निर्दयताका सूचक न हो वह व्यावहारिकताकी मर्यादा है।

जो भार अणुव्रतीने ठेके पर दे दिया है गाड़ीवान अणुव्रतीके निषेध करते हुए अपने स्वार्थके लिये उसे जैसे तैसे ले जाता है, उसमें अणुव्रती सदोष नहीं है।

जहाँ ऐसी स्थिति हो और साधन नहीं है ओर किसी कारणसे सवारी पर चढ़ना अवश्यम्भावी है, उपरोक्त नियम लागू नहीं है।

१०—अपने आश्रित जीवोंके खाद्य-पेयका कलुषित भावनासे विच्छेद न करना।

स्पष्टीकरण

बहुतसे मनुष्य गाय आदि रखते हैं। जब तक वह दूध देती है उसकी सार सम्भाल रखते हैं अन्यथा अपने घरसे छोड़ देते हैं। जहाँ कहीं भी वह भटकती रहे, फिर यदि दूध देनेकी स्थितिमें होती है, घरपर ला बांधते हैं। समझानेके लिये यह सीधा कलुषित भावनासे होनेवाला खाद्य-पेयका विच्छेद है। इसके और भी बहुतसे प्रकार हो सकते हैं। कलुषित भावनाका तात्पर्य मुख्यतः लोभ और क्रोध आदि से है। आश्रित प्राणियोंमें अपने ऊपर निर्भर रहनेवाले स्त्री, पुत्र, नौकर, गाय, भैंस, घोड़े आदि सभी आ जाते हैं।

थोड़े शब्दोंमें खाद्य-पेयके विच्छेदका तात्पर्य है जो आश्रित प्राणी खाद्य-पेय सम्बन्धी जो सामग्री पानेका अधिकारी है उसे लोभ या

क्रोधादिवश वह सामग्री न देना । दूसरे शब्दोंमें आश्रित प्राणियोंके साथ खाद्य-पेयके सम्बन्धमें वह व्यवहार करना जो सर्वसाधारणमें अनैतिक माना जाता हो ।

आश्रित प्राणियोंके लिये तत्सम्बन्धी उत्तरदायित्व व्यक्तिका रहता है अतः आश्रित शब्दका प्रयोग किया गया है । अनाश्रित प्राणीके खाद्य-पेयका विच्छेद करना अर्थात् जो वस्तु जिसके द्वारा जिसको मिल रही है उसे हड़प लेना या उसे प्राप्त न होने देना तो इस नियमके भावसे अपने आप वर्जित हो ही जाता है ।

यदि कोई दूसरे व्यक्तिका पशु अपने घास आदिको खा रहा है उसे यदि दूर किया जाता है, वह नियमसे बाधित नहीं है, क्योंकि वह उस पशुके अधिकारकी वस्तु नहीं ।

गाय आदिको दूध देनेकी अवस्थामें उसे कुछ विशेष धान्य आदि खिलाते हैं और अतिरिक्त अवस्थामें नहीं खिलाया जाता, वह भी नियमसे बाधित नहीं है क्योंकि यह सर्वसाधारणकी स्वीकृत पद्धति है । नियमका हार्द अनैतिकताका निषेध करनेका है । उसकी साधारण खुराकका यदि विच्छेद किया जाता है तो अवश्य नियम-भंग है ।

आर्थिक या अन्य किसी विवशतासे यदि अणुव्रती तद्विषयक उत्तरदायित्व यथाविधि नहीं निभा सकता तो नियम-भङ्ग नहीं माना जायगा ।

बछड़ेको यदि प्रचलित प्रथाके अनुसार स्तन्यपान नहीं कराया जाता तो नियम-भङ्ग है । प्रचलित प्रथाका पालन करते हुये यथा-समय उसे गोस्तनसे दूर करना पड़ता है, वहाँ नियम-भङ्ग नहीं है ।

११—आश्रित व अनाश्रित प्राणियोंके प्रति क्रूर व्यवहार व प्रहार न करना ।

स्पष्टीकरण

खाद्य-पेय विच्छेदके अतिरिक्त और भी अनेकों अनैतिक व्यवहार हैं जो आश्रित अनाश्रित प्राणियोंके साथ होते रहते हैं । यह नियम सब

व्यवहारोंका निषेध करता हैं। बहुतसे व्यक्ति गाय भस आदि पशुओं को इस प्रकार निर्दयतासे पीटते हैं कि दर्शकके रोम खड़े हो जाते हैं। इसलिये नियममें प्रहार शब्द विशेषतः जोड़ा गया है। अणुव्रतीको ऐसे निर्दयतापूर्ण प्रहार करनेसे वह रोकता है। और भी अनेकों क्रूर (निर्दयतापूर्ण) व्यवहार हुआ करते हैं, उनसे भी अणुव्रतीको बचते रहना होगा।

किसी आक्रमणकारी पशु व अन्य प्राणीके सम्बन्धमें उक्त नियम लागू नहीं है।

१२— चिकित्साके अतिरिक्त किसी प्राणीका अङ्ग-विच्छेद न करना, तप्त शलाका या अन्य कष्टदायक तरीकेसे त्रिशूलादि चिह्न अङ्कित न करना।

क्रोध, द्वेष व लोभादिवश किसी मनुष्य व इतर प्राणी के हाथ, पैर, आँख, कान व नाक आदि का छेद करना घोर हिंसा है। वृषभादिको फलीव करना भी तत्प्रकार की हिंसामें सम्मिलित है। उक्त नियम एतद् विषयक हिंसाका स्पष्ट निषेध करता है।

बैल, ऊँट आदि पर चक्र त्रिशूलादि भी तप्तशलाका से लोग करते हैं। कोई विशेष प्रयोजनसे तथा कोई केवल सुन्दरताके लिये। कष्टदायक सभी प्रकार साधारणतया विवर्जित है।

स्पष्टीकरण

चिकित्साके उद्देश्यसे हाथ, पैर आदिका विच्छेद व त्रिशूल आदि अङ्कित करना नियम-निषिद्ध नहीं है। लड़के-लड़कियोंके कान-नाक आदि बिंधवाना अंगच्छेद नहीं है।

१३—किसी प्राणीको कठोर बन्धनसे न बांधना।

गाय, भैंस आदि पशुओंको बांधना खोलना पड़ता है किन्तु अणुव्रती को यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि उस बन्धन-क्रियामें निर्दयताकी सूचना तो नहीं होती है।

चोर डाकू आदि अपराधी प्राणियोंके अतिरिक्त स्व और पर किसी प्राणीको बाँधना-पीटना आदि भी इस नियमसे वर्जित है।

उन्मत्त पशु या मनुष्यके विषयमें उक्त नियम लागू नहीं है।

१४—आत्महत्या न करना।

मनुष्य-जीवन संघर्षोंका जीवन है, नाना प्रकारकी उथल-पुथल प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें आती ही रहती है। उन संघर्षोंकी चोटको न सह सकनेके कारण मनुष्य मरनेकी सोच लेता है। अन्तमें किसी अस्वाभाविक प्रयत्नसे मर भी जाता है, उसे आत्मघात या आत्महत्या कहते हैं। इस विषयमें बहुतसे उपाय काममें लाये जाते हैं। कोई विष खा लेता है, कोई फांसी ले लेता है, कोई कुँए, नदियाँ, तालाबमें कूद पड़ता है, कोई अपने आपको शूट कर लेता है, कोई किसी ऊँची इमारतसे गिर पड़ता है, कोई रेलकी पटरी पर सो जाता है।

सभी धर्मोंमें आत्महत्याको महापाप माना गया है और यह राज्य नियमसे निषिद्ध भी है।

अणुव्रतीके जीवनमें कैसी ही प्रतिकूल स्थिति क्यों न आये उसे उसका सहिष्णुता और आत्मबलके साथ सामना करना चाहिये। जीवनके कष्टोंसे घबराकर आत्महत्याकी बात सोचना कायरता और क्लीवता है।

कुछ व्यक्ति यह कहा करते हैं कि आत्महत्या कौन करता है, मरना सबको भयंकर लगता है, और यदि कोई करनेकी स्थिति पर पहुँच जाता है वह क्या इस प्रकार के नियमोंको निभानेकी सोचेगा। सब व्यक्ति यह मानते हैं कि आत्महत्या न करना मानवताका प्राकृतिक नियम है तो भी हत्या करनेवाले कर ही लेते हैं।

आत्महत्या कौन करता है यह कथन तो अवास्तविक है। हम अनेकों बार यह पढ़ते और सुनते रहते हैं कि अमुकव्यक्तिने फाटकेमें धन खोकर, अमुकने गृह-कलहके कारण, अमुकने परीक्षामें अनुत्तीर्ण होनेके कारण आत्महत्या कर ली है। सुना जाता है कि जापानमें तो आत्महत्याकी कोई सीमा ही नहीं है। प्रश्न रहता है—क्या इस प्रकारके नियमोंसे

आत्महत्या करनेवाला व्यक्ति अपने आपको रोक सकता है। रोक सकता ही नहीं यह मान लेना भी एकान्त सत्य नहीं होगा। कुछ ऐसे भी उदाहरण आचार्यवरके अनुभव में आये हैं कि आत्महत्या करते करते स्वीकृत नियमकी स्मृति हो जानेसे उन्होंने अपने आपको सम्भाला। कहा जा सकता है कि यह कदाचित् घटनायें हैं किन्तु इसमें तो सम्भवतः कोई दो मत नहीं हो सकते कि यह नियम अणुव्रतीको वह संस्कार और आत्मबल देता है कि वह किसी भी कष्टमें पड़कर भी आत्महत्या की सोचे ही न। हम थोड़े शब्दोंमें कह सकते हैं कि आत्मघातकी स्थिति तक पहुँचे व्यक्तिको यह नियम न भी रोक सके किन्तु उस स्थिति तक वह अणुव्रतीको पहुँचने ही न दे, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

शील-रक्षाके हेतु यदि किसी अणुव्रती महिलाको किसी प्रकारसे स्वयं प्राण त्यागकर देना पड़े तो वह आत्महत्या नहीं है।

१५—भ्रूणहत्या न करना।

कौन नहीं मानेगा कि गर्भहत्या महापाप है, अणुव्रती एवं अणुव्रतिनियों के लिये ऐसी प्रवृत्तियोंमें योगदान करना भी वर्जित है। यद्यपि नियममें गर्भहत्याका निषेध है तथापि उपलक्षणसे शिशुहत्याका भी निषेध हो जाता है। शिशु-हत्याका विशेष तात्पर्य यह है जैसे कि भारतवर्षमें पहले और कुछ अंशमें आज भी प्रचलित है चाहे वह किसी जाति विशेषमें ही क्यों न हो कि लड़कीको जन्मते ही आकका दूध अफीम या किसी अन्य प्रयोगसे मार दिया जाता है। यह शिशु हत्या ही नहीं, वस्तुतः मानवताकी भी हत्या है।

अणुव्रतीके लिये ऐसे कृत्योंका अन्यान्य नियमोंसे स्वतः निषेध हो जाता है तथापि प्रचलित बुराइयोंके प्रति सबके हृदयोंमें घृणा पैदा हो, उन बुराइयोंके विरुद्ध नया वातावरण बने, इसलिये ही इस नियमको स्वतन्त्र रूप दिया गया है।

स्पष्टीकरण

प्रसवके समय जबकि माता और शिशु दोनोंका जीवन खतरेमें हो जाता है उस स्थितिमें नियम लागू नहीं है ।

१६—मांस—जिसमें अण्डा, मांस, सत्त्व, मज्जा और रक्त भी सामिल है—न खाना ।

मांसाहार भी आजके युगमें एक विवाद ग्रस्त विषय बन रहा है । मानव समाज मांसाहारी और शाकाहारी इन दो वर्गोंमें विभक्त है । समय २ पर अनेकों विवादपूर्ण लेख और भाषण जनताके सामने आते हैं । एक पक्ष कहता है कि मनुष्यका प्राकृतिक खाद्य मांसाहार है तो दूसरा पक्ष विविध युक्तियों और प्रमाणोंसे यह सिद्ध कर देता है कि मनुष्य प्रकृतिसे शाकाहारी है । मनुष्य अपनी मूल प्रकृतिसे क्या है ? यह केवल युक्ति और विश्वासका विषय है जो दोनों ही पक्षोंके भिन्न हैं । प्रत्यक्षका पर्याप्त स्थान दोनोंमें ही नहीं है, अतः अपेक्षाकृत यह सोचने के कि मनुष्य अपने मूल स्वभावसे शाकाहारी है या मांसाहारी, यह सोचना अधिक निर्णायक हो सकता है कि मनुष्यको होना क्या चाहिये । इस प्रकार सोचनेसे जो भी निर्णय हमारे सामने आता है, वही इस बातका निर्णायक हो सकता है कि मनुष्य अपने मूल स्वभावसे क्या है ? यह निर्णय न भी हो तो भी कोई आपत्ति नहीं क्योंकि हमारा ध्येय तो यही है कि आजकी विकासोन्मुख मानवताको किस ओर जाना श्रेयस्कर है—सामिषताकी ओर या निरामिषताकी ओर । आज अधिकार-प्राप्ति का युग है । समस्त वर्ग अपने-अपने अधिकारों के लिये लड़ रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति यह कहता है कि मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक जीनेका अधिकार है । आज एक वर्ग दूसरे वर्गको उसके अधिकार दिलानेमें जी जानसे योगदान करता है । पर क्या किसी वर्गने इन अगणित पशुओंकी करुण चित्कारमयी अधिकारोंकी मांग पर भी कान लगाया है । क्या उन्हें इस पृथ्वी पर जीनेका अधिकार नहीं है,

क्या वह मानव जातिके लिये प्राण न्योछावर कर स्वर्गकी कामना करते हैं ? क्या उनके हित संरक्षणका विचार चला कभी सुरक्षा-परिषद्में ? क्यों चले, कैसे चले, उनका वहाँ कौन प्रतिनिधि है ? आज प्राणी जगतमें मनुष्यका राज्य है, उसकी सामन्तशाही है, वह अपनी समाजके लिये इतर प्राणियोंका चाहे जैसा उपयोग करे, उसे रोकनेवाला कौन ? आज यदि मांसाहार निरोधक प्रस्ताव मानव समाजमें आये, अधिकांश व्यक्ति अविलम्ब उसके विरोधमें अपना मतदान कर उस प्रस्तावको असफल करेंगे। किन्तु उस प्रस्तावकी यथार्थता तो तब प्रगट हो जब उस परिषद्में पशुओंको भी मतदानका अधिकार मिले ! अस्तु, आवश्यक तो यह है कि आजकी साम्य भावनाको मानव समाजके कटघरेसे बाहर निकालकर उसे यथासम्भव और भी व्यापक बनाया जावे।

मानव समाजसे मांसाहारका मूलोच्छेद कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं। असम्भव तो वह तब होता जब मांसाहारके बिना मानव जी ही नहीं सकता। पर ऐसी बात है नहीं, करोड़ों मनुष्य निरामिष भोजी होते हुए भी आमिष भोजियोंकी तरह ही नहीं किन्तु उससे भी अधिक सुखमय जीवन बिताते हैं। जब मनुष्य मांसाहारके बिना भी सुखपूर्वक जी सकता है, तब यह क्यों आवश्यक है कि मनुष्य इस हिंसापूर्ण और दूसरे जंगम प्राणियोंके प्राकृतिक अधिकारोंको कुचलनेवाली मांसाहार वृत्तिसे चिपटा रहे।

इस विषय में सबसे बड़ी समस्या जो कि इस ओर विचारने मात्रसे मनुष्यको विमुख करती है वह यह है कि जब निन्नानवे प्रतिशत मनुष्योंका जीवन मांसाहार पर ही अवलम्बित है तिस पर भी अन्नाभावकी चिन्ता मानव समाजको सताती रहती है। यदि सभी मनुष्य मांसाहारका परित्याग कर दें तो भूखों मरनेके अतिरिक्त उनके सामने कोई मार्ग नहीं रहेगा। इसी विचारसरणिसे आक्रान्त होकर ही महात्मा गांधी जैसे अहिंसा प्रसारकोंने शाकाहारमें पूर्ण विश्वास रखते हुए भी इस दिशामें

कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया। और आजके अन्य अहिंसावादी भी अधिकांशतः इस विषयमें मौन हैं। और उस मौनका एक मात्र वही कारण हो सकता है। अस्तु; हमें देखना तो यह चाहिए कि क्या संसारमें कभी एक भी ऐसा आन्दोलन हुआ है जिसके सफल होनेमें बड़ी-बड़ी बाधाएँ न रही हों। किन्तु जब-जब मनुष्यने इन बाधाओंके निराकरण के विषयमें सोचा, प्रयत्न किया तब-तब उसे समाधान मिला है। इतिहास कहता है कि मनुष्य प्रारम्भिक दशामें मांसाहारी ही था, ज्यों २ वह विकासकी ओर अग्रसर हुआ, उसने खेती करना सीखा, अन्न पकाना सीखा और अन्न खाना सीखा। परिणामतः सारा संसार अन्नाहारी है, करोड़ों मनुष्य तो केवल अन्नाहारी हैं। जब मनुष्य मांससे अन्नाहारकी ओर आया है निसन्देह आजके निरामिष-भोजी अपेक्षाकृत मांसाहारियोंसे अधिक विकासकी अवस्थामें हैं। जब मनुष्यका ध्येय मांसाहारकी दिशासे मुड़कर निरामिषताकी दिशामें आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व ही हो चुका था तब आज फिर अहिंसावादियोंको मांसाहारका विरोध करनेमें संकोच और हिचकिचाहट क्यों ?

आजके विचारक ज्यों इस विषयमें उपेक्षाको प्रोत्साहन देते हैं, सहस्रों वर्ष पूर्वके विचारक भी इसी समस्यासे घबराकर यदि मांसाहार पर ही डटे रहते तो मनुष्यकी अन्न-निष्पादन शक्तिका कुछ भी विकास न हुआ होता और शत-प्रतिशत मनुष्य केवल मांसाहारी ही होते, वे अन्नका नाम ही न जानते।

आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। ज्यों २ मनुष्य अन्नका आदी हुआ त्यों २ अन्नका उत्पादन वृद्धिगत हुआ। इतिहासमें विश्वास रखनेवाले इसमें दो मत नहीं हो सकते। आजके वैज्ञानिक साधनोंके युग में तो यह सोचना यथार्थतासे बहुत परे होता है कि मांसाहारका परित्याग कर देनेके पश्चात् मनुष्यके जीनेका कोई सहारा नहीं रहेगा।

इस दिशामें मनुष्यको असम्भवताके दर्शन इसलिये होते हैं कि वह अपनी कल्पनाको एकदम अन्तिम छोर तक ले जाता है। वह सोचता

है आज यदि सारा संसार मांसाहारका परित्याग कर दे तो पर्याप्त अन्न आयेगा कहाँ से ? किन्तु तथ्य यह है कि आज यदि मांस-परिहारका कोई आन्दोलन प्रारम्भ होता है और सफलताकी ओर ही निरन्तर बढ़ता जाता है तोभी सारे संसारका निरामिष भोजी होना शताब्दियों का कार्य होगा। इस दीर्घ कालमें आजका विज्ञानवादी मनुष्य अन्न समस्याको नहीं सुलझा सकेगा, यह नहीं सोचा जा सकता। करोड़ों मनुष्य आज निरामिष भोजी हैं, वे सब किसी एक दिन और एक क्षण में नहीं बने हैं। ज्यों-ज्यों बनते गये हैं त्यों-त्यों अन्नादिकी सुलभता भी बनती गई है। सारांश यही है कि मनुष्य अपनी अव्यावहारिक कल्पनासे ही व्यर्थ इस विषयको अव्यावहारिक बना देता है।

आज किसी नियम व अन्य विषयकी उपयोगिता आंकनेका भी यही एक निर्धारित-सा क्रम हो चुका है कि वह विश्वव्यापी हो सकता है या नहीं ? देखना तो यह है कि सम्भव माने गये नियम और अन्य विषयों में से भी विश्वव्यापी कितने होते हैं ? यदि कोई आदर्श सीमित क्षेत्रमें ही व्याप्त होना सम्भव है तब भी उसके प्रसारकी उपेक्षा क्यों की जाय ? जितने व्यक्ति उसे अपने जीवनमें उतारेंगे, उतनोंका उत्थान होगा, इसमें कौनसी बुराई है !

एक भी व्यक्ति यदि आमिषभोजसे निरामिषताकी ओर बढ़ता है तो बहुत हुआ। अहिंसावादीको तो उसके लिये प्रयत्नशील होना ही चाहिये क्योंकि वहाँ हिंसाका ह्रास और अहिंसाका विकास है। अहिंसावादियोंका इस विषयमें उपेक्षात्मक निर्णय ऐसा लगता है कि मानो सारा संसार सहस्रों वर्षोंके प्रयत्नोंसे भी अहिंसावादी हुआ ही नहीं, आगे उतने ही कालमें वह हो सके, ऐसी सम्भावना नहीं है इसलिये अहिंसाका प्रसार अव्यावहारिक है।

अतः आवश्यक है कि अहिंसावादी इस विषयमें सुसंगठित रूपसे कोई अहिंसात्मक प्रयत्न प्रारम्भ करें। मांसाहार हिंसा-प्रसारका अनन्य साधन है, वह इस अर्थमें कि निरामिषभोजीके हृदयमें हिंसासे स्वतः

घृणा रहती है। अधिकांश निरामिषभोजी प्राणियोंका बध करना दूर रहा मांस तक को देखनेमें कांप उठते हैं। मनुष्यके मारनेकी बात तो अकसर वह सोच ही नहीं सकते। मांसाहारियोंकी स्थिति ऐसी नहीं है, वे पशु-हत्यासे घृणा न करते हुए मनुष्य-हत्याके भी अधिक समीप पहुंच जाते हैं। आवश्यकतावश वह किसी भी हिंसामें सहजतया प्रवृत्त हो सकते हैं। यदि संसारमें मांसाहार उठ जाये तोहोनेवाली बर्बर हिंसायें अवश्य कम होंगी और अहिंसाका मार्ग बहुत कुछ निरापद होगा। अवश्य अहिंसावादी इस ओर ध्यान देंगे।

नियमके विषयमें

‘अणुव्रतीसंघ’ जब कि नैतिक उत्थानका एक अहिंसात्मक संगठन है उसमें-मांसाहार विरोधक नियम अन्यान्य नियमोंकी तरह आवश्यक माना गया है। विगत १२ महीनोंमें, खासकर दिल्ली अधिवेशनके पश्चात्, ज्यों-ज्यों ‘अणुव्रती-संघ’के नियम सार्वजनिक क्षेत्रमें आये, विभिन्न विचारकों और आलोचकोंके हाथोंमें पहुंचे, बहुत सहानुभूति पूर्ण मुझाव आचार्यवरके समक्ष प्रस्तुत हुए, खासकर मांसाहार सम्बन्धी नियमके विषयमें। प्रमुख गांधीवादी विचारक श्री किशोरलाल मश्रु-बालाने मंत्री आदर्शसाहित्य-संघके साथ वैयक्तिक पत्र-व्यवहार करते हुए लिखा था :

“निरामिष भोजनके सम्बन्धमें मेरा व्यक्तिगत मत तो यही है कि कभी-न-कभी मानव जातिको इस पर आना होगा। लेकिन यह एक लम्बा मार्ग है, और जिस हेतुसे आप इस संघका आयोजन करना चाहते हैं उसमें इसका स्थान व्यवहार्य नहीं है। यदि इस विषयमें कदम उठाना हो तो बौधोंके ‘उपोसथ’ व्रतके तौर पर सोचा जा सकता है, यानि मासमें अमुक दिन।”

डा० सातकौड़ी मुखर्जी, प्रधान संस्कृत अध्यापक कलकत्ता युनिवर्सिटी, प्रोफेसर अमरेश्वर ठाकुर व डा० कालीदास नाग आदि बंगाली

विचारकोंने आचार्यवरसे अनुरोध किया कि अणुव्रतोंका प्रसार बंगालमें अपेक्षाकृत अन्य प्रान्तोंसे अधिक सम्भव है, किन्तु मांस सम्बन्धी नियम में कुछ संशोधनकी आवश्यकता है, क्योंकि बंगालियोंके लिये एकाएक सर्वथा मांस परित्याग करना कठिनतम है।

प्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्रकुमारजीने जब कि हांसी अधिवेशनमें सम्मिलित थे एतद् विषयक चर्चाके प्रसङ्गमें सुझाव दिया—“मेरा मत तो यह है कि नियमकी रचना निषेधात्मक है ही वह वैसे ही रहे। जो जन्मजात मांसाहारी हैं उनके लिये इतने शब्द और जोड़ दिये जायें कि पक्षमें या मांसमें इतने दिन खाना। इससे नियमकी निषेधात्मकता भी अक्षुण्ण रहेगी और नियम भी अधिक व्यवहार्य हो सकेगा।”

डा० रामाराव M. A., Ph. D. ने पुस्तकावलोकन व आचार्यवरके साक्षात्सम्पर्कसे अणुव्रतोंके विषयमें अवगत होनेके पश्चात् अन्य सुझावों के साथ निम्नोक्त सुझाव दिया—

“जो मांसभक्षी हैं उनके लिये सप्ताहमें कुछ दिन खुले रहने चाहिए, घरके लिये न भी हो पार्टी आदिमें जहाँ कि खाना अनिवार्य-सा हो जाया करता है।”

मिस्टर एस० ए० पीटरसका सुझाव था कि मांसाहारियोंसे मांस एका-एक नहीं छोड़ा जा सकता। उनके लिये मांस या सप्ताहमें कुछ दिनका प्रतिबन्ध होना चाहिये। मि० राडरिकने पूर्वोक्ति प्रकारके सुझावके साथ २ इस बात पर विशेषतया जोर दिया था कि दवाई आदिके रूपमें तो इस नियमसे व्यक्ति खुला ही रहना चाहिये।

उक्त नियमके सम्बन्धमें ऐसे भी बहुतसे सुझाव आये और आ रहे हैं कि मांस सम्बन्धी नियम ज्यों-का-त्यों रहना चाहिए। अस्तु, इस सम्बन्धमें अभीतक कोई दूसरा निर्णय नहीं हो पाया है। आशा है और भी विचारक इस विषयमें अपने तटस्थ सुझाव देंगे।

इस नियमकी संघटनाको देखकर कई एक विचारकोंको अहिंसा अणुव्रत पर सम्प्रदायिकदृष्टिकोणकी छापसी लगी प्रतीत होती है ; श्री मशरूवाला

ता० १।१।१० के हरिजनमें एक लम्बी टिप्पणी करते हुए लिखते हैं—“यद्यपि यह संघ सब धर्मों के माननेवालों के लिये खुला है और अहिंसा के सिवाय बाकी सब व्रतों के नियम उपनियम साम्प्रदायिकता से मुक्त सामाजिक कर्तव्यों पर निगाह रखकर बनाये गये हैं, लेकिन अहिंसा के नियमों पर पंथ के दृष्टिकोण की पूरी छाप है। उदाहरण के लिये शुद्ध शाकाहार, वह चाहे कितना वाञ्छनीय हो, भारत सहित मानव-समाज की आज की हालत और रचना को देखते हुए मांस, मछली, अण्डा आदि से पूरा परहेज करने और उनसे सम्बन्ध रखने वाले उद्योगों से भी बचे रहने का व्रत जैनों और वैष्णवों की एक छोटी सी संख्या ही ले सकती है। वही बात रेशम और रेशम के उद्योगों के लिये भी लागू है।”

चार अणुव्रतों की संघटना सार्वजनिक असाम्प्रदायिक हो और एक अणुव्रत पर पंथ की छाप लगाने का प्रयत्न किया जाये यह सम्भव भी कैसे माना जा सकता है। इस नियम के पीछे जो दृष्टि है वह नियम की प्रारम्भिक व्याख्या में ही स्पष्ट की जा चुकी है। जिज्ञासु जन इस पर पुनः गौर करेंगे।

स्पष्टीकरण

औषधि आदिके रूप में नियम अबाधक है।

१७—मद्य न पीना।

नियम और उसका विषय इतना स्पष्ट और सर्वमान्य है कि अधिक व्याख्या की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। इतिहास के पन्ने २ में हमें यह मिलता है कि इस मद्य के कारण कितनी जातियों और कितने राष्ट्रों का अधःपतन हुआ है और यह तो प्रत्यक्ष का विषय है ही कि मद्य कितना उन्मादक और मद्य पीये मनुष्य की क्या-क्या दशा अकसर हुआ करती है। इस मद्य ने कितने युवकों को पथ-भ्रष्ट नहीं कर दिया होगा, कितनों का जीवन मटियामेट नहीं कर दिया होगा ! आश्चर्य है, तब भी ब्राण्ड की रूप में सुसज्जित होकर आज की सुशिक्षित जनता को

भी वह आक्रान्त कर ही रहा है। राजकीय प्रतिबन्ध बढ़ते जाते हैं, समय २ पर समाज सुधारकोंके आन्दोलन भी होते रहते हैं, तथापि मद्य-पान संस्कृति और सभ्यताका अङ्ग-सा बनता जा रहा है। कतिपय शीत देशोंमें यह आवश्यक तत्त्व मान लिया गया है किन्तु यह अवि-वेक होगा कि उष्णता प्रधान भारतवर्ष भी उनका अनुकरण करे। कुछ व्यक्ति कहा करते हैं कि मद्य अति मात्रामें पीना हानिप्रद है, साधारणतया पीना तो लाभप्रद भी है। यह गलत दृष्टिकोण है। उन्हें यह पता नहीं कि उचित मात्राके नामपर भी यदि समाजने इसे प्रश्रय दिया तो आगे जाकर वह कितता विनाशकारी सिद्ध होगा। फिर तो व्यक्ति-व्यक्तिकी मनस्तृप्ति ही उचित मात्रा होगी। यह बात नहीं है कि मनुष्य जीवनके लिये मद्यकी इतनी अनिवार्यता है कि शत-शत अवगुणोंसे परिपूर्ण होते हुए भी किसी नगण्य विशेषताको लेकर उसे आश्रय दिया जाये। प्रकृतिने मनुष्यको ऐसे भी पदार्थ दिये हैं जो अवगुण रहित होते हुए भी उसकी आवश्यकताको पूर सकते हैं। अस्तु, व्यक्तिकी आदतोंको पुष्ट करनेके अतिरिक्त हमें इन तर्कों में कोई बल नहीं मिलता।

स्पष्टीकरण

औषधि आदिके रूपमें इसका व्यवहार नियम-वर्जित नहीं है।

१८—मद्य, मांस, मछली व अण्डा आदिका व्यापार न करना।

इस नियमके विषयमें यह तर्क हो सकती है कि मांसाहारियोंके लिये जिन दृष्टिकोणोंसे मांसाहारके सम्बन्धमें अबाधकता रखी गई है वया तद्विषयक व्यापारके विषयमें तत्प्रकारकी अबाधकता अपेक्षित नहीं है? मांसाहार जन-जनसे सम्बन्धित है, तद्विषयक व्यापार इने गिने व्यक्तियों से सम्भवतः सौ में एकसे भी नहीं अतः दोनों नियमोंमें समान अबाधकता आवश्यक है।

स्पष्टीकरण

किसी व्यक्तिके औषधिकी व्यापार है, यदि उसमें उसे मद्यादिमूलक

औषधियोंका भी क्रय-विक्रय करना पड़ता है तो वह उस प्रकारका व्यापार नहीं माना गया है।

१६—शिकार न करना।

यह नियम भी मांस-परित्यागका पोषक है और मनुष्यकी ज्वलन्त हिंसा-वृत्तिको उपशान्त करनेवाला है। प्राचीन कालमें शिकार करनेका अधिक बोलवाला था। अनेकों लोग, खासकर क्षत्रिय, भयंकरसे भयंकर पशुओंका शिकार कर अपने वीरत्वका परिचय देते थे। अब तक भी वह प्रथा समाप्त नहीं हुई है। आज सिंहोंका शिकार करनेवाले कम रहे हैं किन्तु हरिणों और पक्षियों पर निशाना लगाकर अपनी शौक-पूर्ति करनेवाले आज भी बहुत हैं। आश्चर्य और खेदका विषय तो यह है शिकार मांस प्राप्तिके हेतु ही न होकर मुख्यतः विनोद या वीरत्व-प्रदर्शनके लिये किया जाता है। निरपराध जंगम प्राणियोंकी हिंसा और मनुष्यका विनोद। क्रिकेट, हाकी और टेनिस खेलना जिस प्रकार एक मनः प्रसक्तिका साधन है, शिकार भी उन्हीं साधनोंमें सम्मिलित है। मालूम होता है कि मनुष्यने इतर प्राणिमंडलके जीवनसे भी अपने तुच्छतम विनोदका मूल्य अधिक मान रखा है, अस्तु। मनुष्य आखेटके व्यसनसे कुछ दूर हुआ है इसका यह अर्थ तो अभी नहीं माना जा सकता कि वह अहिंसाकी ओर अग्रसर हुआ है। बन्दरोंकी हत्याके लिये हुआ इस वर्ष (सम्बत् २००७) का उपक्रम उसकी छिपी हुई दानवताको प्रगट कर देने जैसा था। मान लेना पड़ता है कि अब मनुष्य समझने लगा है कि इस पृथ्वी पर जीनेका अधिकार केवल मनुष्यको और मनुष्योपयोगी प्राणियोंको ही है। शेष प्राणी जो जीते हैं वह उनकी अनधिकृत प्रवृत्ति है और वह मनुष्यका शम्भु-नेत्र उधर नहीं पड़ा, उसका परिणाम है। उक्त प्रकारकी नृशंस हत्यायें इस बातकी सूचक हैं कि इस धर्म-प्रधान भारतवर्षके आर्य माने जाने वाले लोग भी हिंसा-प्रधान देशोंसे प्रभावित होकर उनके ही पद-चिन्हों पर चलनेका प्रयत्न करते हैं। आज अनुमान बांधे जाते हैं कि देशमें इतने करोड़ बन्दर

हैं, वे इतने करोड़ रुपयोंका अन्न प्रति वर्ष नष्ट कर देते हैं, यदि इतने करोड़ बन्दरोंको मार दिया जाय तो अन्नकी बहुत कुछ सुलभता हो सकती है। मनुष्योंने बड़े २ शहर आबादकर बहुत बड़ा भूखण्ड तो रोक ही रखा है, शेष भूमिसे वह एक इंच भी बिना खेती नहीं रखना चाहते, अब बन्दर जायें कहाँ और खायें क्या ? बन्दरोंमें मनुष्य जितना विवेक होता तो ऐसी स्थितिमें सम्भवतः अवश्य वे बंदरीस्थान की मांग करते। आज बन्दरोंके अवशानका प्रश्न है, सम्भवतः कल हरिणों, पक्षियों और अन्य प्राणियोंकी निर्ममहत्याका प्रश्न होगा। इस प्रकार क्या अन्नकी समस्या हल हो सकती है? लोग कहते हैं कि भारत-वासियोंने इस बार बन्दरोंको मारकर प्रकृतिकी अवहेलना की उसका ही यह परिणाम है कि इस वर्षके आदिमें ही भूकम्प, रेल-दुर्घटना, बाढ़ और अग्निकाण्डके रूपमें प्रकृति (१५ अगस्तके लगभग) का प्रकोप हुआ। इसे एक कल्पनाका अतिरेक भी मान लें किन्तु यह तो स्पष्ट है कि भूमिको निर्बानरी कर देनेके पश्चात् भी अतिवृष्टि अनावृष्टिके रूपमें प्रकृतिके अनेकों प्रकोप होते ही रहेंगे जो कि अन्न नाशके अनन्य कारण हैं। फिर अमानवीय वृत्तिसे किसी एक सम्भावनाको दूर कर देनेसे मनुष्य सुखी होगा ही यह मान लेना एक भ्रान्ति और अन्धविश्वास है।

अणुव्रती इस प्रकारकी जघन्यतम हिंसाओंको शिकार या सङ्कल्पी हिंसाके अन्तर्गत मानते हुये उनसे बचता रहे। म्युनिसिपल-बोर्ड या असेम्बलियोंमें तत्प्रकारकी हिंसाओंका प्रस्ताव व समर्थन न करे। .

२०—अनछना पानी न पीना।

यह नियम अनेकों लट आदि प्राणियोंकी हिंसासे और विकारज रोगोंसे अणुव्रतीको बचाता है। नहरुवाकी एक कष्टप्रद बीमारी है। यह अनुभवमें आया है कि अनछना पानी न पीनेवालोंके प्रायः यह निकलता ही नहीं। यही कारण है कि नहरुवाका प्रचार गांवोंमें अधिक है जहाँ जैसा-तैसा पानी पीया जाता है और शहरोंमें अपेक्षा-कृत कम। हम साधुजन छाना पानी पीते हैं, सैकड़ों वर्षोंके इतिहासमें

किसीके नेहरुवाकी बीमारी हुई हो ऐसा नहीं मिलता । अनछूना पानी नहीं पीनेवाला और भी अनेकों रोगोंसे बच जाता है । नियमका लक्ष्य अहिंसाकी साधना है, ऐहिक लाभ प्रासङ्गिक है ।

स्पष्टीकरण

एक बार छाना हुआ पानी दूसरे सूर्योदय तक छाना हुआ ही माना जा सकता है ।

शर्बत, लेमन, सोडा आदि पानी रूपमें नहीं माने गये हैं ।

कुल्ला आदि करनेके विषयमें नियम लागू नहीं है ।

२१—कसाईखानेका काम न करना, न करनेमें सहयोग देना और न कसाई खानेका काम करनेवाली कम्पनीके शेयर लेना ।

मांसाहार निमित्त होनेवाली असीम हिंसाके विषयमें यह एक असहयोगात्मक नियम है । अणुव्रती ऐसे व्यवसाय करके या अन्य प्रकारसे तत्प्रकारकी हिंसाओंमें योगदान नहीं करेगा । नियम न० १६, १८, १९ और २१ मांसाहार-निरोधक व मांसाहार-निरोधके पोषक हैं । सम्भवतः इन्हीं नियमोंको देखकर श्री किशोरलाल मश्रुवालाको अहिंसा अणुव्रतके नियमोंमें साम्प्रदायिक दृष्टि लगी हो जैसा कि उन्होंने ५-५-५० के हरिजनमें उल्लेख किया है । किन्तु स्थिति तो यह है कि जब शेष चार अणुव्रतोंके नियमोंमें कोई पंथकी छाप नहीं लगाई गई है जैसा कि उन्होंने स्वीकार किया है, तब एक ही अणुव्रतके सम्बन्धमें उस दृष्टि और उस छापकी आवश्यकता हुई हो यह स्वाभाविक नहीं है । किन्तु मांसाहार निरोध पर जिस मर्यादा तक जोर दिया गया है उसके पीछे एक उद्देश्य है—दृष्टि है जो नियम नं० १६ के विवेचनमें बताई जा चुकी है । सम्भवतः उस दृष्टिकोणमें अहिंसावादी दो मत नहीं होंगे ।

स्पष्टीकरण

यदि तत्प्रकारकी कम्पनी आदिके शेयर अज्ञात अवस्थामें या अणुव्रती होनेके पूर्व ले लिये हों तो उनके यथाअवसर बेचनेमें नियम बाधक नहीं होगा ।

२२—जन्म, विवाह, त्योहार आदिके उपलक्षमें आतिशबाजी न करना और न करनेकी सम्मति देना ।

आतिशबाजी बहुतसे अनर्थों की सूचक है । बारूद आकाशमें उड़लकर जहां कहीं भी जा पड़ता है, घास, लकड़ी आदिके ढेरों पर पड़ जानेसे बड़े-बड़े अप्रिकांड हो जाते हैं । धड़ाकेसे बहुतसे पक्षी अपने घोंसले को छोड़ देते हैं, रात होनेके कारण बिल्लीके शिकार होते हैं, अतः इस अनर्थकारी प्रथाका निरोध आवश्यक ही है ।

आतिशबाजी आडम्बर और फिजूलखर्चीमें भी शुमार होती है ।

२३—तपस्या (उपवास) के उपलक्षमें जीमनवार न करना और तद्विषयक जीमनवारमें भोजनार्थ सम्मिलित न होना ।

बहुतसे लोगोंमें खासकर जैनियोंमें यह प्रथा है कि आत्मशुद्धिके लिये एकसे लेकर महीनों तक की विविध तपस्यायें करते हैं, तपस्या की पूर्तिके उपलक्षमें बड़े-बड़े जीमनवार करते हैं, ससुराल और पीहर पक्षसे बड़े-बड़े लेन-देन होते हैं । और भी साथ-साथ विविध प्रकारके ऐसे आडम्बर किये जाते हैं । वहां आत्म-शुद्धिका लक्ष्यगौण दीख पड़ता है और दिखावे का यहां प्रबल । अणुव्रती ऐसे दिखावे को न प्रोत्साहन दे सकता है और न स्वयं कर सकता है, वह अन्यके यहां होनेवाले जीमनवार, जूलूस आदिमें सम्मिलित नहीं हो सकता । इस विषयमें उसे यथा साध्य असहयोग ही रखना होगा ।

२४—अपने भाई, पुत्र तथा अन्य पारिवारिक जनोंके साथ और सौत, जेठानी, देवरानी व ननद आदि एवं उनके बच्चोंके साथ दुर्व्यवहार न करना ।

देखा जाता है कि बहुतसे मनुष्य सब प्रकार की सुख-सामग्रीके होते हुए भी केवल गृह-कलहोंसे पीड़ित रहते हैं और उन्हें यह मनुष्यलोक भी असुरलोक सा प्रतीत होने लगता है । घरमें धन की कमी हो व अन्य सुख-सुविधाओंका अभाव हो, पर यदि गृह-जीवनमें एकत्वका सुख

हो तो व्यक्तिके सारे कष्ट गौण हो जाते हैं, और कलहके कारण आत्माका अधःपतन होता है उससे भी व्यक्ति बच जाता है।

बहुधा जब कलहकी स्थिति बनती है तब दोनों पक्ष अपनेको निर्दोष और प्रतिपक्षको सदोष बताया करते हैं। किन्तु वास्तवमें कोई भी पक्ष नितान्त निर्दोष हो, ऐसे अवसर कम देखे जाते हैं। अधिकांशतः तो व्यक्ति अपनी ही प्रवृत्तियोंसे कलह पैदा करता है और दूसरोंके सर दोषारोपण करता हुआ अपने आप ही उसका परिणाम भोगता है रहता है, उदाहरणार्थ किसी पिताके कई पुत्र हैं, वह किसीको कम प्यार करता है और किसीको अधिक या उसे किसीसे कम स्वार्थ है और किसीसे अधिक, परिणामतः उसका व्यवहार सबके प्रति समान नहीं रहता, वह किसीको उसके हिस्सेका धन भी नहीं देना चाहता और किसीको सब कुछ दे डालना चाहता है। बस यहीं आकर बड़े-से-बड़े कलहका बीजारोपण हो जाता है। पिता पुत्रको बुरा बताता है, पुत्र पिताको। नाना प्रकारके नतीजे निकलते हैं। अणुव्रतीको ऐसे दुर्व्यहारोंसे बचना होगा। दुर्व्यवहार और भी अनेकों प्रकारसे और अनेकों व्यक्तियोंसे हो सकते हैं। थोड़ेसे शब्दोंमें इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। उसका स्पष्ट मानदण्ड यही होगा कि जो व्यवहार अनैतिक व असज्जनोचित हैं वे सब दुर्व्यवहार हैं। वैसे तो ऐसा व्यवहार अणुव्रती किसी अन्यके साथ भी नहीं कर सकता और उसके अवरोधक अन्यान्य नियम हैं ही, तथापि पारिवारिकता मनुष्यके जीवनका एक मुख्य अङ्ग है और वहाँ प्रतिदिन का पारस्परिक व्यवहार है इसलिये यह नियम तद्विषयक दुर्व्यवहारोंकी ओर ही विशेषतः संकेत करता है।

पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंमें भी अनेकों अभद्र व्यवहार गृह वातावरणमें देखे जाते हैं। सास एक बहूको अधिक महत्व देती है एकको कम। गहना-कपड़ा एकसे छिपाती है, एकको देती है या बहुओंसे छिपाकर बेटीको देती है। इसी प्रकार देवरानी जेठानियोंमें काम-काज, गहने-कपड़ेको लेकर और खासकर बच्चोंको लेकर झगड़े होते ही रहते हैं।

अणुव्रतिनी महिलाके लिये आवश्यक है कि वह अपनी ओरसे किसीके साथ ऐसे दुर्व्यवहार न करे।

२५—मृतकके पीछे प्रथा रूपसे न रोना।

रोना भी एक प्रथा, एक रूढ़ि बन चुका है। यह रूढ़ि सब प्रान्तों और सब देशोंमें एक रूपसे नहीं है। कहीं २ नहीं भी हो तथापि अधिकांश भागमें इसकी प्रबलता और विकृतता मिलती है। आवश्यक है, अन्य विवेचनसे पूर्व यह बता दिया जाय कि प्रथा रूपसे रोना कहते किसे हैं। किसी भी निजी व्यक्तिकी मृत्युसे साधारणतः सभीको कष्ट और विषाद होता है। उस विषादके साथ रोना भी स्वाभाविक-सा हो जाता है, किन्तु वह रोना प्रातः काल या सायंकालकी अपेक्षा नहीं रखता। जब जीमें याद आती है तभी आ पड़ता है। ऐसे रोनेपर कोई प्रतिबन्ध काम नहीं कर सकता, वह तो केवल आत्म-साधनाका ही विषय है। जिसका मोह जितना क्षीण या प्रबल होगा वह उतना ही उसकी अपेक्षा रखेगा।

कृत्रिम रोना वह है कि किसी भी मृतकके पीछे चाहे वह ७० या ८० वर्षका बुढ़ा ही क्यों न हो, जिसकी मृत्यु चाहे बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके पश्चात् ही क्यों न आई हो, निश्चित अवधि तक यथाविधि बैठकर रोना ही पड़ता है। चाहे कोई आसामयिक और आकस्मिक मृत्यु क्यों न हो, व्यवस्थित ढंगसे रोना प्रथा और रूढ़ि ही है। यदि कुछ सोचा जाय तो यह हरएककी समझमें आने जैसी बात है कि जिस परिवार में या घरमें कोई असामयिक मृत्यु हो चुकी है, दूसरे अड़ोसी-पड़ोसी व्यक्तियोंका कर्तव्य उन्हें रोनेसे रोकना है या साथ मिलकर उनके हृदय को अधिक क्षोभित कर रलाना है, उस दुःख को भुलवाना है या याद कराते रहना है। देखा जाता है कि मृत्युके अनन्तर १२ दिन तक तो प्रायः घरवालों को सुखसे न रोटी खाने देते हैं न कुछ आराम करने देते हैं। अपने-अपने सुविधानुसार कई औरतें आती हैं तो कई जाती हैं, बहुत समय तक यह चक्र चालू रहता है। घरकी औरतोंके लिये सबके साथ

रोते रहना अनिवार्य होता है। बेचारी कोई औरत शारीरिक दुर्बलता से या अन्य किसी कारणसे रोनेमें सबके साथ नहीं निभ सकती तो परस्पर चर्चा हो जाती है कि इसको क्या दुःख है, इसके वह क्या लगता था आदि। अस्तु, यह तो एक सभ्य समाज विशेष का दिग्दर्शन मात्र है, असभ्य माने जानेवाले समाजोंमें तो न जाने और भी क्या-क्या होता होगा! कहीं इस प्रथा का रोना स्त्रियोंमें ही है और कहीं-कहीं तो पुरुष भी छाती माथा कूट-कूट कर रोनेमें स्त्रियोंसे बढ़कर नम्बर लेते हैं। कुत्रिमता की पराकाष्ठा हो जाती है जबकि वेतन दे देकर अन्य स्त्रियों को रूलवाया जाता है और प्रथा निभाई जाती है। पेशेवर स्त्रियाँ भी इस काममें बड़ी निपुण होती हैं। उनके अन्तरमें कोई दर्द नहीं होता तब भी ऊपरी भावोंमें रोहिताश्रु की माता 'तारा' के विलाप का सा पार्ट अदा कर ही देती हैं। अणुव्रतिनी महिलायें इस प्रथा का अन्त कर सामाजिक जीवनमें क्रान्ति का एक नया अभ्यास प्रारम्भ करेंगी।

बहुत-सी बहिनोंका यह निवेदन रहा है कि समाजकी प्रथाके अनुसार न चलनेसे हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवनमें कटुता आ सकती है, हम पर नाना आक्षेप आ सकते हैं, तब क्या वह नियम हमारे लिये अव्यवहार्य-सा न बन जायेगा।

बहिनोंका प्रश्न किसी अवधि तक अनुचित नहीं है। समाजके अधिकांश व्यक्ति तथ्यहीन सामाजिक ढरोंसे भी ऐसे चिपट जाते हैं मानो समाजकी बुनियाद उन्हीं ढरों पर अवलम्बित है, उनमें थोड़ा भी परिवर्तन बर्दाश्त नहीं करते। किन्तु अणुव्रती पुरुष एवं स्त्रियोंको तो विकास और सुधारके मार्गपर चलना है। उन्हें उन दुविधाओंसे घबड़ाना नहीं होगा। उन्हें तो यह सोच आगे बढ़ना चाहिये कि कोई भी सुधार सर्वप्रथम इने-गिने व्यक्तियोंसे ही प्रारम्भ होता है। अनेकों विरोध सामने आते हैं, किन्तु वास्तवमें यदि वह सुधार है तो अवश्य एक दिन संसारको उस पर आना होता है।

२६—भाँग, गांजा, सुलफा, तमाकू, जर्दा आदि का खाने-पीने व सूँघनेमें व्यवहार न करना ।

धूम्रपान आदि मानी हुई बुराइयां होते हुए भी समाजमें ऐसा घर कर गई हैं कि उनका मूलोच्छेद होना कष्टसाध्य हो गया है। सुधारक जन कभी २ तद्विषयक आंदोलन करते हैं, कहीं २ राजकीय मर्यादित प्रतिबन्ध भी होते रहते हैं किन्तु उन उपक्रमोंकी अपेक्षा व्यापारियों द्वारा किये जानेवाले विज्ञापन कहीं अधिक आकर्षक हुआ करते हैं। वे लोग समाज और राष्ट्रके हितको तनिक भी नहीं सोचते हुए हजारों और लाखों रुपये खर्चकर बीड़ी और सिगरेटका प्रचार करते हैं। कभी २ शहरोंमें देखा जाता है, मोटरों और तांगोंपर मय लाडलस्पीकर ग्रामोफन बज रहा है, सैकड़ों व्यक्ति खासकर बच्चे उसे चारों ओरसे घेरे चल रहे हैं। बीच २ में एक व्यक्ति भाषण देकर अपनी बीड़ियों की श्रेष्ठता बतलाता है और बीड़ियोंकी बौद्धार करता है। बच्चे और बड़े-बड़े झुपट २ कर मुफ्तकी बीड़ियां उठाते हैं और पीते हैं। शायद सोचते हैं, इन बीड़ियोंके पैसे थोड़े ही लगते हैं। पर उन्हें पता नहीं कि ये बिना मूल्यकी बीड़ियां जीवन भर उनकी जेबोंसे पैसे निकलवाती रहेंगी। इस प्रकार किये जानेवाले बच्चोंके उस दयनीय पतनको देखकर किसका हृदय रो न पड़ता होगा ?

किसी भी बुराईका आना सहज और जाना कठिन है। कहा जाता है कि कोलम्बसकी खोजके पूर्व इन देशोंमें बीड़ी या तम्बाकूका कोई नाम ही नहीं जानता था। सन् १४९२ में जब कोलम्बसने 'क्यूबा' टापू ढूँढ निकाला, उसने अपने कुछ साथियोंको वहाँके निवासियोंका हालचाल जाननेके लिये भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर देखा—इधर-उधर बैठे बहुतसे आदमी मुँह और नाकसे धुंआ निकालते हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वस्तुस्थितिका ज्ञान किया। जाते समय कौतुहलके लिये कुछ व्यक्तियोंको यूरोप ले गये। वहाँके नकलची उनकी नकल करने लगे। सन् १४९४ में कोलम्बसने अमेरिकाकी दुबारा यात्रा की

और वहाँकी स्त्रियोंको तमाकू सूँघते देखा, विनोदके तौर पर यहाँकी जातियोंके लिये एक प्रिय वस्तु बनी। यूरोपसे वह भारतवर्ष और एशियाके अन्य भूभागोंमें आई। देखा आपने। तमाकूका इतिहास। विनोद २ में आई, आज धक्के खाकर भी यहाँसे बिदा नहीं लेती। किन्तु अणुव्रती तो अपने यहाँसे व्यक्तिगत रूपसे इसे बिदा दे ही देंगे। यह व्यक्तिगत सुधार ही समष्टि सुधारका प्रतीक होगा।

२७—विवाह, होली आदि पर्वोंमें गन्दे गीत व गालियाँ न गाना एवं अश्लील व्यवहार न करना।

अशिक्षित समाजोंमें तो उक्त प्रसङ्गों पर अश्लील गीत व गालियाँ गानेका ढर्रा है ही, कतिपय अपने आपको सभ्य होनेकी डींग हाँकनेवाले लोगोंमें भी ऐसे प्रसङ्गों पर अश्लीलताका मूर्त रूप दृष्टिगोचर होता है। भले-भले आदमी होलीके अवसर पर ऐसे होते हैं मानों उनकी समझका दिवाला ही निकल गया हो। वे इतने बे-भान होकर गंदे गीत गाते हैं, कि चाहे स्त्रियाँ पासमें खड़ी हों, चाहे बच्चे उनकी करतूतोंको देख रहे हों, वे यह नहीं सोच सकते कि हमारी प्रवृत्तियोंका उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। पर्दे और अवगुंठनमें रहनेवाली लज्जावती स्त्रियाँ जमाई और उसके सम्बन्धियोंको गालियाँ (गन्दे गीत) गाने बैठती हैं तो बेचारे विवेकशील व्यक्तियोंके लिये कानोंमें अंगुली डालनेका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है। अणुव्रतीके लिये चाहे वह पुरुष व महिला कोई भी हो, आवश्यक है, ऐसी प्रवृत्तियोंसे स्वयं बचा रहे और इन कुप्रथाओंको समाजसे दूर करनेके लिये यथासाध्य अहिंसात्मक प्रयत्न भी करे।

२८—होलीके पर्व पर राख आदि गन्दे पदार्थ दूसरों पर न डालना।

पर्व और त्योहार किसी विशेष सामाजिक उद्देश्यको लेकर प्रारम्भ होते हैं पर आगे चलकर उसकी वास्तविकता लुप्त हो जाती है और लोग उसकी जड़ परम्पराको ही सब कुछ मानकर उसके जड़ उपासक हो जाते हैं। सही अर्थमें सांप चला जाता है, लोग लकीरको पीटते हैं। इस होली पर्वके तो न कोई प्रामाणिक इतिहास ही है और न इस पर होनेवाली

प्रवृत्तियाँ भी शिष्टजनोचित कही जा सकती हैं। कुछ लोग राख, कीचड़ आदि वस्तुओंको एक दूसरे पर उछालनेकी प्रथाको भी उपयोगी सिद्ध करनेके लिये साहित्यिक कल्पनायें करते हैं। कहते हैं, इसमें भी कोई वैज्ञानिक तथ्य है। कुछ भी हो, गाँवोंसे लेकर दिल्लीकी सड़कों पर भी जिस प्रकारकी होली मनाई जाती है उसमें तो बुरे ही तथ्य अधिक प्रस्फुटित होते हैं। अणुव्रती उक्त प्रकारकी प्रवृत्तिमें भाग न ले।

यद्यपि नियमकी शब्द-रचनाके अनुसार गुलाल-रंग आदि पदार्थ उसकी सीमामें नहीं आते तथापि उनका भी उपयोग जो अणुव्रती न करेगा वही विशेष आदर्श माना जायग। रंग-गुलाल आदिको नियममें नहीं लिया गया है, वहाँ उनकी आवश्यकता अपेक्षित नहीं हैं। वहाँ एक मात्र दृष्टिकोण यही है कि सर्व साधारणके बद्धमूल संस्कार एकाएक दूर नहीं होते। उन्हें क्रमशः दूर करनेके लिये निर्धारित नियम प्रथम भूमिका है। बहुत सम्भव है कि शीघ्र ही नियमकी परिधि गुलाल आदि तक भी व्यापक हो जाये।

२६—मनुष्यबाहित रिक्शामें न बैठना।

स्पष्टीकरण

विशेष स्थितिमें नियम लागू नहीं है।

मनुष्य स्वार्थी प्राणी है, वह अपने स्वार्थके लिये हाथी, घोड़ा आदि प्राणियोंकी सवारी करता है। अब तो वह अपनी सुख-सुविधाके लिये मनुष्य पर भी बैठने लगा है। यह एक अमानवीय कर्म-सा लगता है, एक मनुष्य पशुकी तरह गाड़ीसे जुटता है और दूसरा मनुष्य उस गाड़ी (रिक्शा) में बैठता है। सचमुच ही यह समानता-प्रधान युगमें मानवताका घोर अपमान है। प्रश्न आता है—रिक्शाकी सवारीका जब निषेध है तो पालकी, डोली आदि पर बैठनेका निषेध क्यों नहीं जब कि वह भी उसी प्रकारकी सवारी है ? यह सच है कि दोनों सवारियों में उक्त दृष्टिकोणसे कोई अन्तर नहीं है तथापि पालकी या डोलीमें बैठना अब किसी विशेष स्थितिका ही रह गया है। पहाड़ी व अन्य

किन्हीं दुर्गम स्थानोंमें ही प्रायः इन साधनोंकी अपेक्षा रहती है, जहाँ अन्य साधन काम नहीं आ सकते। रिक्षाके लिये यह बात नहीं है। अतः यह नियम व्यवहार्य नहीं माना जायगा।

स्पष्टीकरण

जहाँ ऐसी स्थिति हो कि रिक्षाही एक मात्र साधन हो और रिक्षा में बैठे बिना कोई विशेष अड़चन आती हो तो उस स्थितिमें नियम लागू नहीं है।

३०—किसी भी प्रकारके मृत-भोजमें भोजनार्थ न जाना।

स्पष्टीकरण

शोक-प्रदर्शनार्थ दूसरे गाँवमें गये व्यक्ति पर यह नियम लागू नहीं है। जन्म और विवाहकी तरह मृत्युने भी आडम्बरका रूप ले लिया है। एक वृद्धकी मृत्युके साथ बहुधा उसके परिवारवालोंकी भी आर्थिक मृत्यु सी हो जाती है। देखनेमें भी यह एक अभद्र व्यवहार मालूम पड़ता है कि एक ओर शोक-संतप्त परिवार रोता है, दूसरी ओर सैकड़ों आदमी पाहुने होकर आ बैठते हैं। किसी स्त्री का पति चल बसता है, पुत्र-पौत्र कोई कमानेवाले नहीं हैं, पंच लोग इकट्ठे होकर सोचते हैं, व्यक्ति बड़ा नमूना-था, उसके पीछे इतना खर्च तो होना ही चाहिए, नगद रुपये नहीं तो क्या हुआ गहने और जमीनका स्टेट काफी है, इस अकेलीको कितने धनकी आवश्यकता है, इस प्रकारसे निर्णय कर बेचारीका बहुत कुछ द्रव्य खर्च करवा देते हैं। किसीके पास कुछ नहीं है तो कर्ज कराके भी सामाजिक प्रतिष्ठाको बचाते हैं। किन्तु वे पंच लोग फिर कभी इकट्ठे होकर नहीं सोचते कि उस बेचारीका आजीविका साधन क्या है ? वह कितने आर्त्तध्यानमें है ? अस्तु, अणुव्रती उत्थानकी ओर अग्रसर होता हुआ समाजमें एतद्विषयक बहिष्कार प्रथाको जन्म देगा। हालाँकि यह बहिष्कार उसका साधारण सा ही है, फिर भी समाजमें एक नया स्पन्दन पैदा करेगा, स्वभावतः अनेकों लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होगा और वे इस प्रथाकी हेयता और उपादेयताके विषयमें कुछ सोचेंगे।

३१—क्रोधादिवश किसीको गाली न देना।

गाली देना अशिष्टताका सूचक है। एक सभ्य मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह अश्लील और भद्दे शब्दोंका उच्चारण न करता रहे। कई कई मनुष्योंके ऐसे भद्दे शब्दोंका, 'तकिया क्लाम' होता है कि वे बातचीतके प्रसङ्गमें पुनः पुनः उन शब्दोंको दुहराते रहते हैं, सुननेवालोंको शर्म मालूम होती है और उन महाशयोंको पता तक नहीं चलता कि हम क्या कहते जा रहे हैं। अणुव्रतीको अपनी वाणीका अवलोकन करते रहना चाहिए। उसमें कहीं भी यदि अश्लीलता और असभ्यताकी गन्ध हो तो शीघ्रातिशीघ्र उसका संशोधनकर लेना चाहिए। कोमलता और भद्रता उसकी वाणीके सहज गुण होने चाहिए। नियममें क्रोधादिवश गाली देनेका निषेध है उसका तात्पर्य यह नहीं कि अतिरिक्त बुराइयोंके विषयमें कुछ सोचा ही न जाय। नियम केवल संकेत करनेवाले होते हैं, किन्तु उन्हें जीवनमें उतारनेवाले व्यक्तिको नियमके पीछे रही समस्त भावनाओंको भूल नहीं जाना चाहिए। किसी भी नियमका वास्तविक तत्त्व उसके पीछे रही भावनामें अंतर्निहित रहा करता है। किसी नियमको उसके शब्दार्थ तक ही नहीं मान लेना चाहिए।

स्पष्टीकरण

मूर्ख, बदमाश आदि उपालम्भ सूचक साधारण शब्द गाली नहीं माने गये हैं। अश्लीलता और असभ्यताके सूचक शब्द विशेषतः गाली के अंतर्गत माने गये हैं।

क्रोध शब्दके साथ आदि शब्द जोड़ देनेसे हास्य, कौतुहल, भय आदि अन्य स्थितियोंमें भी तत्प्रकारके शब्दोंका निषेध हो जाता है।

यदि आवेशादिवश गालियां मुँहसे निकल पड़ती हैं तो दूसरे दिनके आत्म-चिन्तनमें उनके प्रति ग्लानिकी जाय और जितनी बार गाली बोली गई हो उतने द्रव्य खाद्य-पेयके ३१ द्रव्योंसे कम कर लेने चाहियें। यह विधान भूलके प्रायश्चित्त स्वरूप है।

३२—लोभ या द्वेषवश आग न लगाना ।

आग लगाना दूसरी बात है, लगाना दूसरी । आग लगाना किसी भूलका परिणाम हो सकता है, आग लगाना किसी अन्तर्स्थित जघन्य-तम वृत्तिका । आग लगानेके मुख्यतः दो ही कारण प्रतीत होते हैं—एक लोभ, दूसरा द्वेष ।

लोभ—

जिस मालकी बीमा (इन्स्योरेंस) बिकी हुई है, भाव अधिक मन्दे हो गये हैं, ऐसी स्थितिमें कितने ही धूर्त व्यक्ति अपने आप अपने ही मालमें आग लगा देते हैं और इन्स्योरेंस कम्पनीसे पूरे रुपये ऐंठनेका प्रयत्न करते हैं । यह अमानवोचित प्रवृत्ति है । अणुव्रती ऐसे कार्यसे सचेता बचा रहे ।

सुना जाता है कि अमेरिका जैसे पूँजीपति देशोंमें बाजारमें मूल्य न गिर जाय इसलिये ही सहस्रों और लाखों मन वस्तु जला दी जाती है या समुद्रमें डुबा दी जाती है । यह भी परले सिरेकी अनैतिकता है । अणुव्रती ऐसे कार्योंका मनसे भी समर्थन न करे ।

द्वेष—

साम्प्रदायिक दंगोंमें हजारों अग्निकाण्ड हुए, वे द्वेषमूलक थे, व्यक्तिगत झगड़ोंमें भी मनुष्य कभी-कभी प्रतिपक्षीके मकान, माल आदि में आग लगा देनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं, वे यह नहीं सोचते कि प्रतिशोध लेनेका यह कितना घृणित तरीका है । यह भी तो नहीं जाना जा सकता, वह आग कहाँ जाकर बुझेगी । अग्निकाण्डोंमें लाखों करोड़ोंकी हानि और कभी-कभी गाँवके गाँव साफ हो जाया करते हैं, बैर किसीसे, नाश किसी का वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है ।

सत्य अणुव्रत

‘सत्त्वं लोगम्नि सारभूयं’—सत्य ही लोकमें सारभूत है, इसमें विश्वास रखते हुए अणुव्रतीको छोटे-बड़े सब प्रकारके असत्यसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए। मानवता के प्रत्यक्ष घातक असत्यसे बचना तो उसके लिये अनिवार्यतया आवश्यक है।

इस सम्बन्धमें निम्नाङ्कित नियमोंका पालन अणुव्रतीके लिये अनिवार्य है :—

१—जमीन-मकान, पशु-पक्षी, सोना-चान्दी, धन-धान्य तथा घी-तेल, आंटा आदि खाद्य पदार्थ या अन्य किसी वस्तुके क्रय-विक्रयके समय, माप, तोल, संख्या आदिके विषय में असत्य न बोलना।

एक ही नियमसे क्रय-विक्रयके सम्बन्धसे बोले जानेवाले अधिकांशतः असत्योंका निरोध हो जाता है। नियम सुस्पष्ट है तथापि सर्वसाधारण इसकी व्यापकताको समझ सकें इसलिये नियमके एक-एक पहलूपर प्रकाश डाला जाता है :—

जमीन मकानके सम्बन्धमें

क—किसी दूसरे व्यक्तिकी जमीन व मकानको अपना बताकर उसका पट्टा व खत अपने नामसे बना लेना।

ख—दूसरेकी अच्छी जमीन व मकानको अशुभ व अन्य किसी प्रकारसे दोषयुक्त बताना।

ग—मकान-जमीन दूसरेकी हो या अपनी जमीन दूसरेके रेहन हो या उस जमीनके और भी हिस्सेदार हों ऐसी जमीन अपनी कहकर बेचना।

घ—कुँवा, मन्दिर, धर्मशाला आदि बनानेका व जीर्णोद्धार करनेका झूठा बहाना करके लोगोंसे चन्दा लेना।

ङ—अपनी जमीनकी कीमत बढ़ानेके लिये झूठ-मूठ कह देना, अमुक व्यक्ति मेरी जमीनके इतने रुपये कह चुका है।

च—अपने मकान आदिकी फॉर्लिस रजिस्ट्री करवाकर उसे दूसरेका बताना आदि।

पशु पक्षीके सम्बन्धमें

क—गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट आदि पशुओंके बड़े दोषोंके सम्बन्धमें असत्य बोलकर बेच देना। बड़े दोषोंका तात्पर्य है, जिन दोषोंके कारण खरीददारको सोचना पड़े मेरे साथ धोखा हुआ।

ख—दूसरेके पशुको अपना कहकर बेच देना।

ग—गाय आदिकी उम्र, दूध, प्रसव आदिको अन्यथा बताकर बेच देना आदि। इसी प्रकार पक्षियोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए।

सोना-चांदीके सम्बन्धमें

क—सोना-चांदीकी पालिश (मोल) वाले गहने वर्तन आदिको सोने-चांदीका कहकर बेच देना।

ख—सोनेको बदल देना या अधिक खाद मिला देना। मासे, तोले आदिको लेकर संख्या, तोल आदि अन्यथा बताना। इसी प्रकार धन-धान्य, घी, तेल, आटा व अन्य पदार्थोंके क्रय-विक्रयमें संख्या माप तोल आदिको लेकर बोले जानेवाले अनेकों असत्य होते हैं। अणुव्रती उन असत्योंसे बचता रहे।

अणुव्रतीका परम ध्येय तो इस विषयमें असत्य मात्रसे बचनेका है तथापि आजकी दूषित व्यापार-पद्धतिमें यह प्रथम अभ्यास होगा, वह उक्त प्रकारके स्थूल असत्योंका तो अपने व्यापारिक जीवनसे सर्वतः मूलोच्छेद करे।

आज यह लोकभाषा बन गई है कि व्यापारमें तो असत्यसे ही काम चलता है, सत्यवादी आजके युगमें कमाकर थोड़े ही खा सकता है। यही कारण है कि असत्य इतना सहज हो गया है कि लोग यहाँ तक सोचते भी नहीं कि हमारे जीवनमें यह कोई बुराई है। इसी बुराईके कारण भारतवासियोंका घोर पतन हो चुका है और हो रहा है। धर्मप्रधान कहलानेवाले भारतवर्षके लिये यह शोक का विषय है। सभी कहते हैं—क्या करें ऐसी ही स्थिति है। पर सोचना यह है, स्थितिमें परिवर्तन लाना क्या व्यक्ति-व्यक्तिका कर्तव्य नहीं है?

व्यक्ति सब कुछ है, व्यक्ति-व्यक्तिसे ही समाज बनता है, यही मानते हुए अणुव्रतीको चाहिए कि वह उक्त नियमकी मर्यादासे भी अधिक सत्यको प्रश्रय दे, चाहे ऐसा करते समय उसे कठिनाइयोंका सामना ही क्यों न करना पड़े। उसे तो लोगों की इस बद्धमूल धारणा को तोड़ना है कि व्यापार तो असत्यके आधार पर ही चल सकता है।

२-समझ-बूझकर असत्य निर्णय-फैसला न देना।

यह नियम न्यायाधीश तथा पंचोंसे सीधा सम्बन्ध रखता है। कोई अणुव्रती न्यायाधीश बना हो या कोई न्यायाधीश अणुव्रती बन गया है जैसे कि आज तक भी कई न्यायाधीश अणुव्रती बन चुके हैं तो उसके निर्णयोंमें अन्यायका कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। एक अणुव्रती न्यायाधीश घूस लेकर निजीव्यक्तिका पक्षपात करके व किसी बड़े व्यक्ति व कर्मचारीसे प्रभावित होकर अन्यथा निर्णय नहीं दे सकता। यही गतिविधि अणुव्रतीकी तब होगी जब कि वह किसी मामलेको निपटानेके लिये पंच मान लिया जायेगा। हम कल्पना कर सकते हैं, उस राष्ट्रकी न्याय-व्यवस्था कितनी सुन्दर हो सकती है जिस राष्ट्रके न्याय विभागमें सारे कर्मचारी अणुव्रती ही हों।

वास्तवमें प्रचलित न्याय व्यवस्था की कठिनाइयोंसे लोग पूर्णतः ऊब गये हैं। भले आदमी जहाँ तक हो सके न्यायालयोंका मुँह भी नहीं देखना चाहते हैं। इसका ही परिणाम है यद्यपि 'अणुव्रती-संघ' की स्थापना हुए अभी बहुत थोड़ा समय हुआ है तथापि आसपासके वातावरणमें बहुतसे व्यक्ति यह चाहने लगे हैं और कइयोंने तो आचार्यवरके समक्ष इस प्रकारके प्रस्ताव भी रख दिये हैं कि अणुव्रतियों का एक 'आरवीट्रेसन बोर्ड' (पंचायत) स्थापित होना चाहिए जो सर्वसाधारण के पारस्परिक झगड़ोंका निपटारा करता रहे। हमारा विश्वास है, जनता अणुव्रतियोंमें अधिक से अधिक विश्वास करेगी और वह न्यायालयोंकी समस्त दुविधाओंसे बचेगी।

३—किसी व्यक्ति, दल, पक्ष या धर्म विशेषके प्रति आक्षेपात्मक नीतिसे भ्रान्ति न फैलाना या झूठा आरोप न लगाना ।

आजका मनुष्य ज्यों-ज्यों वर्ग-संघर्ष मिटाना चाहता है त्यों-त्यों प्रकारान्तर से वह अधिक बढ़ता जाता है । जितने राजनैतिक दल हैं वे एक दूसरेको गिरानेमें वैध-अवैध सभी सम्भव उपायोंको खोजते रहते हैं । आक्षेप, झूठा प्रचार, आरोप ये तो नित्यप्रतिके कार्य हो चुके हैं । व्यक्तिके समानाधिकार का जनतंत्रीय उच्चादर्श व्यक्ति-व्यक्तिमें द्वन्द्व पैदा करनेका प्रतीक हो रहा है । चुनावोंकी दुर्व्यवस्था का तो कोई वर्णन ही नहीं किया जा सकता । वहाँ आकर तो वह लोकशाही, गांधीजीके शब्दोंमें हुल्लड़शाही और बर्नाडशाके शब्दोंमें पागलपनका रूप ले लेती है । इन सबका मूल कारण दल-संघर्ष ही है ।

विभिन्न धर्म औरसम्प्रदायोंमें भी वही छींटाकशी देखी जाती है ; दो व्यक्तियोंमें मनमुटाव होते ही परस्पर आक्षेपों और आरोपोंकी बौझार होने लगती है । अणुव्रती आदर्शवादी होगा, वह किसी एक राजनीतिक वर्गमें विश्वास रखनेवाला व प्रमुख होकर भी दूसरे दलोंके प्रति न भ्रान्ति फैलाने का प्रयत्न करेगा और न झूठे प्रोपेगण्डाको ही प्रोत्साहन देगा । वह किसी एक धर्मका हृदयसे अनुयायी होते हुए भी, दूसरे धर्मोंके साथ असहिष्णुता और असह्य भाव नहीं रखेगा, इसी प्रकार व्यक्तिगत झगड़ोंमें भी वह असत्य प्रचार को प्रश्रय नहीं देगा । अणुव्रतीका यह आदर्श सारे समाजके लिये अनुकरणीय होगा, यदि समाजने भी तदनुकूल प्रवृत्ति की तो बहुत-सी समस्याओंका हल होकर एक नयी चेतना, नये संगठनका आविर्भाव होगा ।

४—न्यायाधीश व पंच आदिके समक्ष अनर्थकारी असत्य साक्षी न देना ।

आवश्यक तो यह है कि जीवनके किसी भी व्यवहारमें अणुव्रती असत्यको प्रश्रय न दे, न्यायाधीश व पंच आदिके समक्ष तो अणुव्रतीकी प्रामाणिकता होनी अनिवार्य ही है । इस थोड़े समयमें ही परिचित

क्षेत्रोंमें कई न्यायाधीशोंने अणुव्रतीकी गवाहीको पूर्ण विश्वस्त मानकर तदनुकूल निर्णय दिये हैं। अणुव्रतीको समझना चाहिए, हमारा उत्तरदायित्व बढ़ रहा है और हमें इसे सही अर्थमें निभाना है।

नियममें अनर्थकारी विशेषण जोड़ देनेका तात्पर्य कुछ लोग यह मान बैठे हैं, अणुव्रतीको ऐसी असत्य साक्षी नहीं देने चाहिए जिससे कोई बहुत बड़ा अनर्थ घटित होता है जैसे कि किसीको मृत्यु-दण्ड। अन्य स्थितियोंमें अणुव्रती स्वतंत्र है, पर यह समझना भूल है। अनर्थकारी विशेषणका प्रयोजन केवल इतना ही मानना चाहिए कि अणुव्रती स्वयं या उसका कोई निजी व्यक्ति मूलतः सत्य होते हुए भी प्रमाणों (साक्षियों) के अभावमें असत्य साबित हो रहा हो, उस स्थितिमें अणुव्रती कल्पित साक्षी देने-दिलवानेसे न बच सके तो इस प्रयुक्त विशेषणके अनुसार नियम कोई आपत्ति पैदा नहीं करता क्योंकि वहाँ किसीका अनर्थ नहीं होता, यद्यपि प्रतिपक्षी अपना अनर्थ मान सकता है किन्तु उसका यह मानना अवास्तविक है। उक्त स्पष्टीकरण व्यक्तिगत मामलोंसे अधिक सम्बन्ध रखता है।

जहाँ विपक्षी आदमी मूलतः सत्य है, उसके विपक्षमें जानते हुए साक्षी देना अनर्थकारी साक्षीके अन्तर्गत ही आ जाता है।

५—किसी व्यक्तिसे भूठा खत या दस्तावेज न लिखवाना जसे—१००) देकर २००) का खत न लिखवाना।

मनुष्य स्वार्थी होता है, बहुधा वह दूसरेकी दयनीय स्थितिसे भी अपना स्वार्थ पुष्ट करना चाहता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति ऐसी स्थितिमें फंसा है कि उसे आज ही ५००) की आवश्यकता है, बिना इतने रूपयोंके उसका व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा खतरेमें है। परिचित व्यक्तियोंके पास वह कर्ज लेनेके लिये जाता है। कई व्यक्ति ऐसे मिल जाया करते हैं जिनकी पहली शर्त होती है ५००) लेकर १०००) लिये का खत मुझे लिख दो, बेचारेके और कोई मार्ग नहीं होता तो विवश होकर ऐसा कर ही देना पड़ता है। निश्चित अवधिके बाद यदि वह १०००)

नहीं चुका सकता तो उसके घर, दुकान आदि निलाम कराके भी वे अदा किये जाते हैं। अस्तु, अणुव्रती अर्धाजिनके इस अनैतिक मार्गपर नहीं जा सकता। अब प्रश्न रहता है व्याजका। अत्यधिक व्याज लेना भी एक अनैतिकता है। यद्यपि इस विषयमें अभी तक कोई नियम लागू नहीं किया गया है तो भी अणुव्रतीको प्रचलित लोकमर्यादाका तो अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

कुछ व्यक्ति सौ, दो सौ रुपये देते समय व्याजके रुपये उस रकमके साथ गिनकर लेनेवालेसे चिट्ठी लिखा लिया करते हैं, वह यदि उस प्रांतमें साहूकारी प्रथा मानी जाती हो तो उस पर उक्त नियम लागू नहीं है, यदि ऐसा न हो तो ऐसा करनेमें उपर्युक्त नियम बाधक होगा।

कई २ नौजवान लड़के दुर्व्यसनोमें फँसकर फिजूल खर्च करते हैं, मां-बाप धनी होते हैं पर जब उनसे उन्हें पर्याप्त धन नहीं मिलता, वे इधर उधरसे जैसी-तैसी चिट्ठियां लिखकर रुपये लेते हैं, व दुर्बुद्धिवाश यहाँ तक भी लिख दिया करते हैं कि माता या पिताके मरते ही दो सौ के चार सौ रुपये दूंगा। ऐसी चिट्ठियां लिखने और लिखवानेका तो अणुव्रतीके लिये प्रश्न ही नहीं उठ सकता, साधारण व्याज पर भी ऐसे व्यक्तियोंको रुपये देनेमें अणुव्रतीकी अप्रतिष्ठा है, ऐसी स्थितिमें अणुव्रतो सावधान रहे।

६—स्व या पर कन्या और पुत्रके विवाह आदिके निमित्त असत्य न बोलना जैसे—किसी अन्धीको सूझती व किसी सच्चरित्राको दुश्चरित्रा बताना।

विवाह सम्बन्धको लेकर भी समाजमें बड़े २ असत्य बोले जाते हैं, उदाहरणार्थ—

अन्धीको सूझती और बहरीको सुननेवाली बता देना व उन कमियों का उल्लेख न करना, क्षय, मृगी, मूर्छा, पागलपन, नपुंसकता आदि रोग युक्त सन्तानको निरोग बता देना व उन रोगोंका उल्लेख न करना इत्यादि व इस प्रकारके और भी अनेकों भूठ होते हैं, अणुव्रतीमें उनकी

वासना तक न होनी चाहिए। वह तो इस बातके लिये सचेष्ट रहे कि इस विषयमें मैं सूक्ष्म असत्यसे भी बचता रहूँ।

कुछ लोग कहा करते हैं कि अपनी ही लड़की में कोई ऐब या बड़ी बीमारी हो, उसका यदि हम उल्लेख कर दें तो या तो उसका सम्बन्ध होता ही नहीं यदि होता है तो अच्छे घरमें नहीं होता। वे यह नहीं सोचते हम अपने और अपनी लड़की के स्वार्थकी चिन्ता करते हैं। बेचारे उस व्यक्तिकी क्या दशा होगी जो हमारे विश्वास पर उस लड़की से शादी कर लेगा। क्या वह जन्म भर रोता नहीं रहेगा, क्या वह नहीं मानेगा, अणुव्रती ने मेरे साथ भयङ्कर विश्वास-घात किया। अस्तु अणुव्रतीके लिये अपना आदर्श मुख्य है अन्य बातें गौण।

छोटी उम्रके लड़के लड़कियोंको बड़ी उम्रके और बड़ी उम्रके लड़के लड़कियोंको छोटी उम्रका बता देनेसे भी अणुव्रतियोंको यथासम्भव बचना चाहिए।

७—असत्य मामला न करना और न करनेकी सम्मति देना।

सत्य बातके लिये भी अणुव्रतीको न्यायालयतक पहुँचनेसे यथा सम्भव बचना चाहिए। असत्य मामला सजाने व सजवानेकी तो सोचनी ही नहीं चाहिए।

८—मिथ्या आरोप या कलंक न लगाना।

विद्वेष और ईर्ष्या ही मुख्यतः मिथ्या आरोप या कलंक लगानेके कारण बनते हैं। कलंक या आरोप भी बहुत प्रकारसे लगाये जाते हैं। बहुधा प्रतिपक्षी जिस क्षेत्रमें प्रतिष्ठा पानेवाला होता है वैसे ही आरोप गढ़ लिये जाते हैं। यदि वह राज कर्मचारी है तो उसे गिरानेके लिये 'वह घूस लेता है' अन्याय करता है; यदि वह समाजिक क्षेत्रमें प्रतिष्ठाप्राप्त है तो वह व्यभिचारी है, शराब पीता है; यदि वह व्यापारी है तो वह धाटेमें है, उसका दिवाला निकलनेवाला है, कर्जदार है; यदि वह सार्वजनिक कर्ता है तो परोपकारका ढोंग है, पैसे ठगनेका रास्ता है, अमुक चन्देकी व संस्थाकी धनराशिसे वह इतने रुपये खा गया आदि-आदि।

अणुव्रती अपने प्रतिपक्षीको भी अवैध उपायोंसे गिरानेका प्रयत्न नहीं करेगा और न तत्प्रकारके अवैध व अनैतिक प्रकारसे उससे आगे आनेके लिये प्रस्तुत होगा ।

६—व्यक्तिगत स्वार्थ या द्वेषवश किसीका मर्म (गुप्तबात) प्रकाश न करना ।

किसी व्यक्तिके मर्म या रहस्यको प्रकट करना एक महान् हिंसा है, समय-समय पर इससे बड़े अनर्थ भी हो जाया करते हैं । कभी-कभी सामूहिक स्वार्थवश किसी रहस्य व मर्मको प्रकट किये बिना रहना भी समाजस्थ व्यक्तिके लिये दुस्साध्य हो जाया करता है, इसलिये नियममें व्यक्तिगत स्वार्थ और द्वेषवश ये दो प्रयोजन जोड़ दिये गये हैं । स्थितियोंका विवेक अणुव्रती स्वयं करे, विचारे, जो रहस्य मैं प्रकट करने जा रहा हूं उसमें अन्तरात्मामें छिपा द्वेष या व्यक्तिगत स्वार्थ ही तो कारण नहीं है ।

१०—किसीको मित्रभाव दिखाकर अनिष्टकारी सलाह न देना ।

मित्रभाव दिखाकर किसीको अनिष्टकारी सलाह दे देना घोर विश्वासघात है । प्रथम अणुव्रतके नियम नं० ८ में ही इसकी वर्जना हो जाती है तथापि स्पष्टताके लिये व व्यापक बुराईकी ओर सीधा ध्यान खींचनेके लिये यह स्वतन्त्र नियम होना आवश्यक था ।

अणुव्रतीका उचित आदर्श तो यह है कि उसका परम शत्रु भी उससे सलाह लेनेके लिये आये और सच्ची सलाह देनेसे अपना ही अहित होता हो तो भी अणुव्रती उसे असत्य व अनिष्टकारी सलाह न दे ।

११—धरोहर या बन्धक (रेहन) वस्तुसे इन्कार न होना ।

धरोहर—किसी अन्य व्यक्तिकी वस्तु जो उसके आग्रहपर सुरक्षाके लिये अपने पास रखली जाती है । बंधक—जो जमीन, मकान, गहना, सोना, चान्दी, रुपये आदि लेकर अस्थाई रूपसे किसी व्यक्तिके हस्तगत कर दिये जाते हैं, इस शर्तपर कि जब रुपये वापस करूंगा अपनी वस्तु ले लूंगा ।

अणुव्रतीका व्यवहार विश्वस्त होना चाहिए, साधारण स्थिति व विशेष स्थितिमें उसका आदर्श अक्षुण्ण रहना चाहिए। धरोहर और बंधकको लेकर बहुतसे भगड़े आये दिन हुआ करते हैं। अणुव्रतीके लिये अपने स्वार्थका त्याग करके भी भगड़ेसे बचना श्रेयस्कर है, मानो किसी व्यक्तिने अणुव्रतीके पास अपना गहना बंधक रखा, उसकी अवधि समाप्त हो गई, वह व्यक्ति मांगनेका कोई हक नहीं रखता, फिर भी वर्ष-दो-वर्ष बाद वह यदि रुपये देकर अपनी वस्तु लेना चाहता है तो भी अणुव्रतीको नहीं देनेके भगड़ेमें नहीं पड़ना चाहिये। इससे समय-समय पर वह सर्व साधारणकी कटु आलोचनाका पात्र बन सकता है।

यदि बंधककी अवधि समाप्त हो गई, दो-चार बार कह देनेपर भी वह व्यक्ति रुपये नहीं देता है, इसपर यदि अणुव्रतीको वह वस्तु बेचनी पड़े तो मय व्याजके अपने रुपयेसे अधिक अणुव्रती नहीं रख सकता।

धरोहर रखनेवाला व्यक्ति स्वयं मर गया हो और उसके वारिसोंको उसका कुछ भी पता न हो तो भी अणुव्रतीको वह धरोहर अपनी नहीं कर लेनी चाहिए।

१२—जाली दस्तखत न बनाना और न बनानेकी सम्मति देना।

दुर्बुद्धिसे किसीके नामसे अपने दस्तखत कर देना व किसीके समान अक्षर बनवाकर उसका दुरुपयोग करना अर्थात् बैंकसे व उसके निजी व्यक्तिसे रुपये उड़ा लेना व अन्य किसी प्रकारसे उस सहारेसे धोखा दे देना किसी भी स्थितिमें अणुव्रतीके लिये वर्जनीय है। वह इस प्रकारके षड़यन्त्रोंमें सम्मति भी नहीं दे सकता।

स्पष्टीकरण

सद्बुद्धिसे जहाँ किसी व्यक्तिकी अनुपस्थितिमें उसके पुत्र, भाई व मैनेजर आदिको उसके नामके दस्तखत कर देने पड़ते हों वहाँ यह नियम लागू नहीं है।

१३—भूटे रेशनकार्ड न बनवाना।

यह छोटी सी भूठ भी इतनी बड़ी हो गई है कि सभ्य और शिक्षित,

धनी व निर्धन बहुत ही थोड़े आदमी उससे बचे होंगे। नैतिक स्तर अधिक गिर जानेके कारण अधिक लोग यह अनुभवमें ही नहीं लाते कि हम कोई पाप कर रहे हैं। उनका ध्यान रहता है कि जितने अधिक राशन-कार्ड बनने सम्भव हैं उनसे कम बनवाना ही मूर्खता है, सभी तो अधिक बनवाते हैं। सोचा जा सकता है कि आत्म पतनके साथ-साथ ऐसी भावनाओंसे अन्नाभावके युगमें कितनी बड़ी राष्ट्रीय अव्यवस्था होती है। अणुव्रतीको किसी भी पापके लिये गताऽनुगतिक नहीं होना है, वह वास्तविकताका पथिक है। उसे बड़े असत्योंकी तरह इन छोटे असत्योंसे भी बचकर रहना होगा। बड़ी भूठ बोलनेका तो किसी-किसीके और कभी-कभी काम पड़ता है, साधारण असत्योंका प्रसङ्ग प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें आता ही रहता है। उन असत्योंसे बचनेसे ही चारों ओरसे बातावरणमें अणुव्रतोंकी सुरभि फैल सकती है। आज तककी अवधिमें अणुव्रतियोंने जब-जब अपने राशन-कार्डोंसे अपने आप कहकर अतिरिक्त संख्या व्यवस्थापकों द्वारा घटवाई उनका इतना अच्छा प्रभाव उन पर पड़ा कि अब आवश्यकतानुसार वे जब कभी संख्या बढ़वाना भी चाहते हैं उनका कार्य सबसे पहले कथन मात्रसे होता है। आदर्श पर चलनेमें कठिनाई होती है पर लाभ भी अवश्य होता है।

स्पष्टीकरण

घरका कोई व्यक्ति लम्बी अवधिके लिये यदि बाहर चला गया हो तो अणुव्रती उसकी अतिरिक्त संख्यासे लाभ नहीं उठा सकता।

१४—किसीको भूठा प्रमाणपत्र (Certificate) न देना।

इस नियमका सम्बन्ध वैसे तो मास्टर, डाक्टर आदिसे अधिक है वैसे सभी व्यक्तियोंसे जिनका प्रमाण पत्र जहाँ चलता हो। असत्य प्रमाण पत्र देनेके मुख्य कारण हैं—रिश्वत, दबाव, सिफारिश, निजीपन आदि। अणुव्रती किसी भी उक्त प्रकारके कारणसे असत्य प्रमाण पत्र न दे।

१५—असत्य विज्ञापन न करना ।

लोग कहते हैं विज्ञापनकी दुनिया है जो जितना अधिक विज्ञापन कर सकता है वही अपने व्यवसाय व कार्यमें उतना ही अधिक सफल होता है । किन्तु अब तो इन विज्ञापनोंकी भरमारमें असत्य की दुनिया होने लगी है । वास्तविकता कम और प्रचार अधिक आजके मनुष्यका सिद्धान्त सा बनता जा रहा है । बड़े-बड़े व्यवसायी लाखों और करोड़ों रुपये मात्र विज्ञापनमें व्यय करते हैं । जो पदार्थ मानव जातिके लिये अहितकर है उसका भी व्यवसाय बढ़ानेमें उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता । अणुव्रतीका विज्ञापन वास्तविकता—शुन्य नहीं होना चाहिये । वास्तविकताका दिग्दर्शन सुन्दर शब्दोंसे व सुन्दर प्रकारसे हो वह दूसरी बात है । अतिशयोक्तिपूर्ण और असत्यप्रायः विज्ञापन अणुव्रतीके लिये सर्वथा वर्जित है ।

अचौर्य अणुव्रत

“दंतसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं” दंतशोधनार्थ अदत्त तृण मात्रका भी ग्रहण विवर्जित है, चोरी है। अचौर्यके इस सिद्धान्तको अपना लक्ष्य मानकर अणुव्रती इसकी साधनामें सचेष्ट रहे। कमसे कम वह ऐसी चोरीसे तो अवश्य बचे, जो लोक निन्दनीय हो।

इस सम्बन्धमें निम्नाङ्कित नियमोंका पालन अणुव्रतीके लिये अनिवार्य है :—

१—ताला तोड़कर, दीवार आदि फोड़कर, गठरी या तिजोरी खोलकर, डाका डालकर या पाकेटमारी करके किसी वस्तुकी चोरी न करना।

२—अन्यकी पड़ी वस्तुको चोरवृत्तिसे न उठाना।

किसी पड़ी वस्तुको चोरवृत्तिसे न उठाना, इतने मात्रसे निर्दिष्ट प्रकारकी समस्त चोरीका निषेध हो जाता है, तथापि स्पष्टताके लिये चोरीके विभिन्न प्रकारोंका उल्लेख करनेके लिये नियम दो कर दिये गये हैं। और भी उस प्रकारकी चोरीके जितने प्रकार होते हों अणुव्रती उनसे बचता रहे।

स्पष्टीकरण

मार्गादिमें पड़ी वस्तु यदि इस बुद्धिसे उठाई जाती है कि यदि इसका मालिक मिला तो उसे दे दूंगा, तो वह चोरी नहीं मानी गई है।

दो भाइयोंके अधिकारकी वस्तु यदि एक भाईके अधिकारमें है और उस वस्तुको लेकर भागड़ा चल रहा है या चलनेवाला है तो अणुव्रती भाई ताला तोड़कर, तिजोरी खोलकर, चोरकी विधिसे वह वस्तु अपने अधिकारमें नहीं कर सकता। अणुव्रतीको अबैध उपायोंको काममें लाना श्रेयस्कर नहीं है।

अणुव्रती दो या अधिक व्यक्तियोंके अधिकारकी वस्तुको हजम करनेकी नियतसे अपने पास नहीं रखेगा, जबतक वह वस्तु विवादग्रस्त

हो तब तब सुरक्षाके उद्देश्यसे उसे अपने अधिकारमें रखनी पड़े वह दूसरी बात है ।

३—राज्य-निषिद्ध वस्तुका व्यापार न करना ।

यह नियम दो प्रवृत्तियोंपर मुख्य रूपसे प्रतिबन्ध करता है । जिस वस्तुका व्यापार करनेमें राजकीय नियमके अनुसार लाईसेन्स लेना अनिवार्य है, अणुव्रती, बिना लाईसेन्स, चोरी रूपसे तत्प्रकारकी वस्तुका व्यवसाय नहीं कर सकता । दूसरी बात, जो ठेकेके व्यवसाय हैं अर्थात् जिन व्यवसायोंके लिये राज व्यक्ति विशेषको ही अधिकार देता है, ऐसे व्यवसाय बिना राजकीय अधिकार पाये, अणुव्रती चोरी से नहीं कर सकता ।

यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक होगा कि प्रायः नशीली वस्तुओंके लिये ही ठेका देनेकी प्रथा है । नशीली जैसे—मद्य, अफीम, भांग, गांजा आदि । इनमेंसे मद्यके व्यवसायका निषेध तो नियम नम्बर १-१८ करता ही है । अतिरिक्त नशीली चीजोंके व्यवसायसे भी अणुव्रत दृष्टिको समझते हुए अणुव्रतीको बचना चाहिये ।

४—राज्य निषिद्ध वस्तुको दूसरे देशमें ले जाकर या दूसरे देशसे लाकर न बेचना ।

व्यक्तिगत स्वार्थके लिये मनुष्य सामूहिक स्वार्थको भुला देता है । राजकीय निषेध होते हुए भी प्रछन्नतया दूसरे देशमें ले जाकर माल बेचना इसी बातका सूचक है । इस तरहका व्यापार करनेवाला व्यक्ति राष्ट्र-धर्मका तो उल्लंघन करता ही है साथ-साथ अनेक प्रकारके मानसिक क्लेश भी अपने लिये पैदा करता है, जो कर्म बन्धनके प्रबल कारण हैं । उसका होश तो मारे डरके उड़ता रहता है, राजकीय व्यक्तियों के यदि हाथ चढ़ जाता है तो प्रतिष्ठा और धन दोनोंसे हाथ धोना

नोट—राजनैतिक दल, विशेषकी निर्धारित नीतिके अनुसार इस नियम और इस प्रकारके अन्य राजकीय नियमोंका उल्लंघन नियमोंमें बाधक न होगा ।

पड़ता है। अणुव्रती तनिक लोभके लिये इस अनैतिक मार्गपर न जाय। यद्यपि नियममें एक देशसे दूसरे देशका निषेध किया गया है तो भी उपलक्षणसे एक देशके विभिन्न प्रान्त भी नियमकी मर्यादामें आ जाते हैं। जैसे भारतवर्षमें ही वितरण व्यवस्थाकी दृष्टिसे अन्न वस्त्र व चीनी आदिके लिये एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें ले जानेका कहीं-कहीं राजकीय प्रतिबंध है। अणुव्रती ऐसे व्यापार नहीं करेगा जो इस राजकीय व्यवस्थाके भङ्गसे ही सम्भव हों।

नियममें 'न बेचना' इस शब्दसे यह स्पष्ट हो जाता है। यह नियम तत्प्रकारके व्यापारका ही निषेधक है, व्यवहारोपयोगी वस्तुओंके विषय में लागू नहीं है किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि उन वस्तुओंके नामसे अणुव्रती जैसी तैसी प्रवृत्ति करता रहे। उसे प्रत्येक नियम बढ़ते हुए परिणामसे पालन करना है। बहुत प्रकारकी कठिनाइयों को ध्यानमें रखते हुए यह मर्यादा निर्धारितकी गई परन्तु इसलिये नहीं कि उस मर्यादासे अणुव्रती यथासाध्य लाभ उठानेकी सोचता रहे।

इस नियमके अनुसार अणुव्रती इलीगल एक्सचेंज डिफ्रेंसका व्यवसाय नहीं कर सकता।

नियमके सम्बन्धमें एक नोट दिया गया है। जनतंत्रका युग है, अणुव्रती जड़ होकर ही जीवन बसर नहीं करता है। वह जनतंत्र साम्राज्य का आदर्श नागरिक है, वह राजनैतिक सामाजिक परिस्थितियों और परिवर्तनोंसे परे नहीं है। हर विषयमें उसे औचित्य और अनौचित्यको सोच कर ही चलना पड़ता है। नियम भङ्ग करनेमें अनैतिक दृष्टि ही वर्जित है जोकि मनुष्यके व्यक्तिगत स्वार्थसे ही अपेक्षित है। सिद्धान्तके तौर पर सविनय अवज्ञा भङ्गके विषयमें अणुव्रती स्वतंत्र है, यही इस नोटका तात्पर्य है।

५—किसी चीजमें मिलावट कर या नकलीको असली बताकर न बेचना (मिलावट जैसे—दूधमें पानी, घीमें वेजीटेबल घी और आटे में सिंगराज; नकलीको असली जैसे—कलचर मोतीको असली बताना)।

मिलावटका प्रश्न आजकी हृदयद्रावी समस्या बन चुकी है। इससे हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि आजका मनुष्य मनुष्यतासे कितना अधिक नीचे खिसक गया है ; उसकी दृष्टिमें पैसा परमेश्वर है, मनुष्य मनुष्य भी नहीं है ! भारतवर्ष एक धर्म-प्रधान देश था और किसी दृष्टिसे आज भी है किन्तु भारतवासियोंके जीवन-स्तरको देखकर कहना पड़ता है कि सचमुच आज यह धर्मप्रधान देश नहीं रहा है। तभी तो आज दूधके नामसे पानी पाउडर, फेटा दूध, घीके नामसे वेजीटेबल घी, चर्बी, आटेके नाम शक्करकंदी व पत्थरका चूर्ण, सरसों-तेलके नामसे मूंगफली, अलसी व सियाल काण्टाका तेल, मिठाई व आइसकण्डीके नामसे शुद्ध चीनीके बदले सेक्रीन् जो स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकर मानी जाती है, चायके नामसे सेक्रीन् और दूधका पाउडर, मक्खनके नामसे दहीके साथ वेजीटेबल घीको मथकर बनाया गया नकली मक्खन आदि सर्व साधारणको खाने-पीने व अन्य व्यवहारके लिये मिलते हैं।

यही हाल दवाइयोंके विषयमें है। अधिकांश वस्तुएँ सच्चीकी शान-शक्तीमें नकली भी बन जाती हैं। मिलावटकी कोई मर्यादा ही नहीं है। शुद्ध खाद्यके अभावमें पहले तो अधिक संख्यामें बीमार होते हैं फिर स्वास्थ्य लाभके लिये दवाइयोंकी शरण लेते हैं। सोचा जा सकता है कि नकली और मिश्र दवाइयोंसे कितना अधिक अनिष्ट होता होगा। क्या ऐसी स्थितिमें स्वास्थ्यके बदले मृत्युके समीप नहीं चला जाता है मनुष्य ? वैद्य कहता है—“दवा सेवन करते हो तब तक चीनी और चीनीकी वस्तु मात्र तुम्हारे लिये विष है, पूरा ध्यान रखना, शुद्ध मधुके साथ तुम्हें दवा लेनी है।” बेचारा बाजारमें किसी दूकानपर शुद्ध मधु लिखा बिज्ञापन देखकर मधु खरीद लेता है। वास्तवमें वह मधु जिसके साथ वह दवा लेता है शुद्ध चीनी होती है जिसके परहेज स्वरूप वह दूध भी फीका पीता है। अस्तु, नैतिक पतनकी इस दयनीय दशा पर किसे तरस नहीं आती होगी जिसमें केवल अर्थार्जन ही जीवनका मुख्य तत्त्व रह गया है।

मिलावटका अर्थ, अस्वाभाविकतया एक पदार्थमें विजातीय पदार्थको मिला देना ।

६—क्रय-विक्रयमें कूट तोल-माप न करना ।

मेगस्थनीजके कथनानुसार भारतवर्षमें एक दिन वह था जब, सोने चांदी और जवाहिरातकी दूकानोंपर भी ताले नहीं लगाये जाते थे, एक आज जब कि दूकानदार स्वयं ही आनेवाले ग्राहककी हजामत बना देने के लिये प्रस्तुत रहते हैं । एक दिन जब कि बिना हककी एक पाई भी लेना अधर्म माना जाता था, आज सामनेवाले व्यक्तिका यदि सर्वस्व ही नष्ट होता हो उन्हें कोई चिन्ता नहीं, उनका स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए । बहुतसे लोगोंका ऐसा विश्वास ही बन चुका है कि एक दम सच्चा तोल-माप रखनेवाला अन्य व्यापारियोंकी प्रतियोगितामें ठहर ही नहीं सकता । यह केवल भ्रांति है । जो व्यक्ति सच्चाईके आधारपर व्यापार करता है उसे कुछ दिनोंके लिये सफलता न मिले, वह बात दूसरी है किन्तु बहुधा अन्ततः उसकी सच्चाई चमकती है और वह सबसे अधिक लाभ उठा लेता है । झूठा तोल-माप करना अपनेआप व्यवसाय नष्ट करना है । धोखा खानेवाले भी बार-बार नहीं खाते । जिस ग्राहकने जिस दूकानदारसे एक बार धोखा खाया वह तो उससे सदाके लिये चला ही जाता है । सारांश यह हुआ कि सच्चाईका व्यापार प्रारम्भमें मन्द और क्रमशः मजबूत होता जाता है । झूठ और कपट पर आधारित व्यापार अपने प्रथम क्षणसे ही क्रमशः मन्द होता जाता है और बहुत शीघ्र अस्त भी हो सकता है । अस्तु भौतिक क्षति तो फिर भी संभावित है किन्तु आत्मपतन तो अवश्यम्भावी है । मिलावट व कूड़ तोल मापसे भारत-वर्ष दूसरे राष्ट्रोंमें भी अभी भी पूरी अप्रतिष्ठा कमा रहा है । ऐसे व्यापारी अपना आत्म पतन करनेके साथ-साथ देशके साथ भी बहुत बड़ी गद्दारी करते हैं, इन कारनामोंसे न उनका और न देशका भला होनेका है ।

७—एक प्रकारकी वस्तु दिखा कर दूसरे प्रकारकी वस्तु न देना ।

व्यापारी वर्ग मिलावटमें भी अधिक आगे बढ़ गया है। वह सोचता है मिलावटमें आधी वस्तु तो सच्ची चली ही जाती है, वह भी क्यों ? इसलिये दूसरा रास्ता अपनाया गया। दिखाना कुछ और देना कुछ, दिखाया पीपरमेण्ट दिया सोरा, ऐसी भी घटनायें सुनी हैं। और भी सम्भव उपाय इसमें अछूते नहीं रखे जाते। यह घृणित प्रवृत्ति अणुव्रती के लिये सर्वथा वर्जित है।

स्पष्टीकरण

‘दूसरे प्रकारकी वस्तु’ का तात्पर्य विजातीय वस्तुसे है, एक ही वस्तु के सामान्य विशेष आदि प्रकारोंके विषयमें नियम लागू नहीं है।

८—अच्छे मालको बट्टा काटनेकी नीयतसे खराब या दागी न ठहराना।

बट्टा काटनेके लिये मालको खराब कर देना या खराब या दागी ठहरा देना भी अवैध और अनैतिकताका सूचक है। माल जितना खराब व दागी है उसके लिये बट्टा काटनेकी मांग करना दूसरी बात है। अणुव्रती अतिरिक्त लाभ उठाने व निरर्थक झगड़ा खड़ा करनेसे सदैव बचता रहे।

९—किसी संस्थाका ट्रस्टी या पदाधिकारी या कार्यकर्ता आदि होकर उसकी धनराशिका अपहरण या स्वार्थवश अपव्यय न करना।

संस्थाओंका युग है। आये दिन सार्वजनिक प्रयोजनके लिये एक-न-एक संस्था खुलती रहती है। उत्तम-से-उत्तम व्यक्ति पदाधिकारत्वके लिये चुने जाते हैं, उनमें भी बहुतसे ऐसे निकल जाते हैं जिनका ध्येय पदाधिकारके साथ स्वार्थसिद्धि करना है। कुछ लोगोंका तो संस्थाओंकी पूंजीसे व्यक्तिगत लाभ उठानेका पेशा ही बन जाता है, कुछ पदाधिकारी अपने निजी व्यक्तियोंको लाभ उठानेका अवसर दे देते हैं। कुछ ट्रस्टीपनका दावा करते हुए मूल पूंजीपर ही अधिकार जमा लेते हैं। जन-सेवाके नाम पर धन-सेवा कर लेते हैं।

देखा जाता है कि गौशाला जैसी संस्थाओंके पदाधिकारी भी रुपये हड़प लेनेके आरोपोंसे आये दिन बदले जाते हैं। यह नियम अणुव्रतियोंको एक आदर्श और विश्वस्त कार्यकर्ता व पदाधिकारी बनाता है जो समाज और देशके लिए गौरव का विषय बन सकता है।

१०—जाली सिक्का या नोट न बनाना, न बनाने की सम्मति देना।

जाली सिक्का या नोट बनाना एक बड़ी चोरी और बड़ा राजकीय अपराध है। तत्प्रकारके अपराधियोंको भी विषमतम यंत्रणायें भोगनी पड़ती हैं। अणुव्रती तत्सम्बन्धी षड्यंत्रोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रख सकता।

११—बिना टिकटके रेल आदिसे यात्रा न करना।

आज जनतामें नियमानुवर्तिताका अत्यन्त अभाव है। इससे सामूहिक अव्यवस्थाको बहुत बल मिल रहा है। देशके कर्णधार चिल्ला-चिल्लाकर कहते रहते हैं,—‘जनता अपने कर्त्तव्यको समझे’ किन्तु उनकी आवाज जनताके हृदय तक नहीं पहुँचती। बिना टिकट रेल-यात्रा करना भी इस विषयका एक प्रमुख अंग है। ऐसी चोरियोंको लोग बहुत साधारण समझ लेते हैं किन्तु इन साधारण चोरियोंका आदी होता-होता आजका मानव-समाज अपनी मानवता को ही भूल-सा गया है। जीवनके एक-एक पहलुमें न जाने कितनी-कितनी बुराइयोंने घर कर लिया है। ‘अणुव्रती-संघ’ वह सूक्ष्मदर्शक यंत्र है जो जीवनकी छोटी-बड़ी प्रत्येक बुराईको ढूँढ़ निकालनेका उद्देश्य रखता है। अणुव्रती एक आदर्श नागरिक है, वह किसी विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यके विवेकको भूल नहीं सकता।

स्पष्टीकरण

समयके अभाव या अन्य किसी कारणसे बिना टिकट रेलानिर्वाह बैठना पड़ता हो और यदि पैसे हजम करनेकी भावना और चेष्टा न हो तो उक्त नियममें दोष नहीं आता।

इस विषयमें आज तक अणुव्रतियोंके अनेक अनुभव आचार्यवरके समक्ष आये। बहुतसे अणुव्रतियोंने यह अनुरोध किया कि इस नियमकी आजतक की जानेवाली परिभाषाके अनुसार एक अणुव्रती जो किसी विशेष स्थितिके कारण टिकट बिना खरीदे गाड़ीमें बैठा, उसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि आगे चलकर वह पूछने या न पूछनेपर भी व्यवस्थापकों को पूरा किराया दे। इससे सच्चाईके साथ-साथ दुविधा बहुत बढ़ जाती है। ज्योंही वह आगेका टिकट बना देनेके लिये या कृत यात्राका किराया ले लेनेके लिये व्यवस्थापकोंको कहता है, वे उसकी सच्चाईकी कुछ कीमत नहीं करते प्रत्युत उसे तरह-तरहसे तंग करने लगते हैं। कई बार हमारे सामने ऐसे प्रसंग आये हैं एक-दो स्टेशनोंकी यात्राका किराया ले लेनेका अनुरोध कर देनेपर मूल स्टेशन, जहाँसे गाड़ी चली थी वहाँ तकका किराया लिया गया है और वह भी दुगुना। किरायेसे भी कहीं अधिक समयका अपव्यय किया गया जबकि बिना किराया दिये यदि निकलना चाहते तो बहुत आसानीसे निकल सकते थे। इस स्थितिमें यदि नियमका स्पष्टीकरण इस प्रकारसे हो कि अणुव्रती बिना टिकट यात्रा करनेकी भावना न रखे, यदि स्थितिबश उसे बिना टिकट खरीदे बैठ जाना पड़ता हो तो उसके लिये यह अनिवार्य नहीं कि अपनी ओरसे व्यवस्थापकोंको किराया ले लेनेका अनुरोध करे। अस्तु, अणुव्रतीकी सच्चाईमें भी कोई अन्तर नहीं आयेगा और वह बिना मतलबकी दिक्कतसे बचेगा।

आचार्यवरने समाधान किया, मैं मानता हूँ, कि आजके युगमें लोगोंका दृष्टिकोण सच्चाईको महत्व देनेका नहीं है। यही कारण है, लोग उस ओर नहीं झुकते क्योंकि उस मार्गमें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। अणुव्रती एक प्रामाणिक मनुष्य है, उसके आचरणोंका सर्व-साधारण अनुकरण कर सकते हैं। अतः उसकी प्रवृत्ति हेय नहीं होनी चाहिये। सुविधा और दुविधा वर्तमान क्षणसे ही नहीं देखी जानी

चाहिये, किन्तु उनका सम्बन्ध भविष्यसे समझना चाहिये। मैं उक्त अनुरोधको अयथार्थ नहीं मानता। उस परिभाषाके कारण अणुव्रतीको समय-समय पर अनेक उलझनोंका सामना करना पड़ता है। किन्तु यह कादाचित्क प्रसङ्ग है, उसके लिये आदर्शसे नीचे खिसकना अणुव्रतीके लिये सुन्दर न होगा। कष्ट ही नियमोंकी कसौटी है। उक्त प्रकारकी घटनाओंसे ही जन साधारणका ध्यान सत्यकी ओर आकृष्ट होगा।”

१२—किसी सौदेमें कटौती न करना अर्थात् बीचमें न खाना।

बीचमें खानेका रोग भी जन-जनमें छा गया है। चार पैसेकी वस्तु खरीदकर लानेवाला नौकर भी एक पैसा बीचमें खाना चाहता है। बड़े-बड़े फार्मोंमें काम करनेवाले मुनीम और गुमारते भी अवसर पाकर हाथ रंग ही लेना चाहते हैं। ऐसे किस्से तो आये दिन हुआ करते हैं कि अमुक व्यक्ति पुर्जेकी रकम लेकर या बैंकसे रुपये उठाकर चम्पत हो गया। ऐसे आदमियोंका लोग अभाव-सा प्रतीत करने लगे हैं जिन पर पूरा-पूरा भरोसा किया जा सके। पतन यहाँ तक हो चुका है कि रसो-इया घी या चीनी चुरानेकी चेष्टा करता है, बिलोनेवाली मक्खन पर जी दे देती है, गोदुहा बीचमें ही दूध पी जानेसे बाज नहीं आता। लोगोंका जीवन बड़ा जटिल-सा होता जा रहा है। इधर व्यापार-जगतकी ओर ध्यान देते हैं तो चलानीके कामवाले तो कहते हैं कि आड़ितियेके यदि हम सही भाव लगाते रहें तो हमारा व्यापार चल ही नहीं सकता। रूई, सोना, चान्दी, शेयर, सट्टा आदिका व्यापार व सट्टा करनेवाले तो अपनी आमदनी यही समझ बैठे हैं। खरीदना किसी भाव और व्यापारीको लिखना किसी भाव। यही हाल हर प्रकारकी दलाली करनेवालों का है।

नियम बहुत व्यापक है, जीवनके हर पहलूमें धसी हुई इस प्रकारकी चोरीका निषेध करता है। इस नियमका पालन करता हुआ अणुव्रती किसी भी क्षेत्रमें कितना विश्वस्त रहेगा यह स्वयमेव सोचा जा सकता है। यह भी स्वतः जाना जा सकता है कि यदि देश व संसारके अधिकांश

व्यक्ति अणुव्रती हो जायें तो व्यावहारिक जीवन कितना विशुद्ध और ऊँचा हो सकता है।

स्पष्टीकरण

व्यापारीका आदेश मिला, इस भाव तक तुम इतना माल खरीद सकते हो, यदि उससे नीचे भावमें खरीदकर निर्दिष्ट भाव लगाया जाता है तो उक्त नियममें बाधा आती है।

गांठ-बंधाई आदिके दाम यदि बाजारकी प्रचलित प्रथाके अनुसार काटे जाते हैं तो नियममें बाधा नहीं मानी जायगी।

यदि किसी व्यक्तिने कंठहार, अंगूठी व अन्य कोई भी वस्तु निश्चित दर बताकर अणुव्रती दलालको बेचनेके लिये दी तो अणुव्रती यदि यह स्पष्ट कर लेता है कि आपकी कीमतसे यदि ऊँचे मूल्यमें बेच सका तो वह लाभ मेरा होगा तो वह बीचमें खाना न माना जायेगा।

नियममें यद्यपि सौदेमें कटौती न करनेका निषेध है तो भी उपलक्षण से किसी भी कार्यमें बिना हकके पैसे बीचमें खा लेनेका निषेध हो जाता है।

१३—चोरीकी वस्तु न खरीदना और चोरको चोरी करनेमें सहायता न देना।

चोरीकी वस्तु खरीदना राजकीय अपराध भी है और चोरी जैसे घृणित कार्यको प्रोत्साहन भी। बहुतसे व्यक्ति सस्ती देखकर तत्प्रकारकी वस्तुको खरीदनेमें बड़े तत्पर रहते हैं। अणुव्रती यह जान लेनेपर कि यह वस्तु चोर-वृत्तिसे उठाकर लाई गई है, उसे नहीं खरीद सकता।

ब्रह्मचर्य-अणुव्रत

“कामकामी खलु अयं पुरिसे, से सोयई, भूरई, तप्पई, परितप्पई”
कामार्थी मनुष्य शोक करता है, व्याकुल होता है, भूरता है, संतप्त होता है और परितप्त होता है—यह मानते हुए अणुव्रती पूर्णतया कामविजेता होनेकी अभिलाषा रखे। अनैतिक भोगविलासका त्याग कर संयमकी ओर अधिकाधिक अग्रसर हो।

इस सन्बन्धमें निम्नाङ्कित नियमोंका पालन अणुव्रतीके लिये अनिवार्य है :—

१—वेश्या व पर-स्त्रीगमन न करना।

आर्य संस्कृतिमें ब्रह्मचर्यका सर्वोच्च स्थान है। प्राचीन ऋषि, महर्षि, निर्ग्रन्थोंने अपनी वाणीसे इसका महत्त्व सर्वसाधारणको समझानेमें कोई कमी न रखी। सन्यास-धर्मके लिये तो पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन एक अनिवार्य व्रत ही बन गया, किन्तु समाजस्थ हरेक प्राणी ब्रह्मचारी हो सके, यह असंभव था इसीलिये ‘स्वदारा-संतोष व्रत’ का आविर्भाव हुआ। यही व्रत आगे चलकर धर्मके साथ-साथ नीति और समाज-व्यवस्थाका अंग बना। अब भी भारतीय समाज-व्यवस्थाका मूल इसी मर्यादा पर अवस्थित है। यह भी किसीसे छिपा नहीं है कि भारतीय संस्कृतिमें पतिव्रत-धर्म और पत्नी-व्रतधर्मका कितना गौरवपूर्ण स्थान है। आज पाश्चात्य संस्कृतिमें इस दाम्पतिक व्यवस्था की उपेक्षा प्रारम्भ हुई है किन्तु उसका दुष्परिणाम भी अनेक प्रकारसे सामने आ ही रहा है। भारतवर्षको इस अन्ध-प्रवाहमें बहकर अपनी चरित्र-निधिको नष्ट नहीं कर देना है, आत्म-पतनका राही नहीं बनना है। इन दृष्टिकोणोंसे यह नियम अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

२—किसी प्रकारका अप्राकृतिक मैथुन न करना।

इस जघन्यतम क्रियाका प्रसार भी युवक, बच्चे और वृद्धों तकमें पाया जाता है। इस प्रक्रियासे मनुष्यके स्वास्थ्य, सौंदर्य, साहस, ओज

आदि सारे सद्गुण समाप्त हो जाते हैं और वह निस्तेज जीवन व्यतीत करता है। अणुव्रती उससे प्रति क्षण बचता रहे।

स्पष्टीकरण

स्त्री-संसर्गके अतिरिक्त वीर्य^१ खलित कर देनेके सारे प्रकार अप्राकृतिक मैथुन माने गये हैं।

३—दिनमें सम्भोग न करना।

स्वास्थ्य और मानवीय सभ्यताके प्रतिकूल होनेसे दिवा-सम्भोग अणुव्रतीके लिये विवर्जित है।

४—४५ वर्षकी आयुके बाद विवाह न करना।

वृद्ध-विवाह सब प्रकारसे वर्जनीय है। आवश्यकता तो यह है कि विवाहित अणुव्रती भी पैंतालीस या पचास वर्षके पश्चात् पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करे। इस उम्रमें स्त्री-वियोग हो जाता है तब तो उसे पूर्ण ब्रह्मचारी होकर रहना ही है। वृद्ध-विवाह राजकीय नियमसे भी निषिद्ध है और अन्यान्य विविध दुविधाओंका भी घर है। किसी भी स्थितिमें अणुव्रती अपने आदर्शसे विचलित न हो।

५—एक पत्नीके होते दूसरा विवाह न करना।

स्पष्टीकरण—जहाँ पत्नी सहर्ष आज्ञा देती हो वहाँ उक्त नियम बाधक नहीं है।

प्राचीन कालमें बहु विवाहकी प्रथा थी। एक-एक राजा-महाराजा सैकड़ों और सहस्रों स्त्रियाँ रखते थे ऐसा पुराणादि ग्रन्थोंसे मालूम होता है किन्तु आजके युगमें यह एक घृणित प्रथा बन चुकी है। अणुव्रती के लिये न तो बहु-विवाह उपादेय है न वह अपने आदर्शके अनुसार किसी स्त्रीको रखेलीके रूपमें रख सकता है।

स्पष्टीकरण

किसीकी स्त्री बंध्या, उन्माद-ग्रस्त व अन्य किसी भयङ्कर बीमारीसे ग्रस्त हो और वह सहर्ष दूजे विवाहके लिये अनुमति देती हो तो उक्त नियम बाधक नहीं होगा।

६—राजकीय वैवाहिक परिभाषासे अल्पवयस्क सन्तान का विवाह न करना ।

वृद्ध विवाहकी तरह बाल-विवाह भी सर्वमान्य कुप्रथा है । इसका अन्त करनेके लिये सरकारको भी प्रतिबन्ध लगाना पड़ा है । तब भी लोग पूर्णतः इस प्रथासे विमुख नहीं हो पाये हैं । प्रतिबन्धके होते हुए भी नाना प्रकारसे बचकर लड़के लड़कियोंके नियम-निषिद्ध विवाहकर ही दिया करते हैं । अणुव्रती इस नियमको आत्मानुशासन ही मानकर पूर्णतः निभानेके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा रहे ।

स्पष्टीकरण

जिस अणुव्रतीके लड़के व लड़की की सगाई उसके अणुव्रती होनेसे पूर्व हो चुकी है उसके विवाहके सम्बन्धमें उक्त नियम लागू नहीं है ।

७—जहां शील-भङ्गका प्रसङ्ग या अन्देशा मालूम दे, ऐसी जगह नौकरी न करना या न रहना ।

चरित्र भ्रष्टता मनुष्यकी नैतिक मृत्यु है । अणुव्रतीके रहन-सहनका बाता-वरण पवित्र और सुस्पष्ट होना चाहिये । उसे ऐसे आदमियोंकी संगति और मित्रतासे बचना चाहिये जिनके साथ रहनेके कारण ही अपनी प्रतिष्ठापर धब्बा आता हो । वेश्या, नर्तकी आदिके यहाँ नौकरी करने का या उनके बातावरणमें ही चिरकालिक स्थिति करनेका तो उक्त नियम स्पष्ट निषेध करता ही है ।

८—अकेली पर-स्त्रीके साथ एक कमरेमें रात्रि-शयन न करना । विशेष परिस्थिति अपवाद-रूप समझी गई है ।

चरित्रकी सुरक्षाके लिये यह नियम आवश्यक माना गया है । स्त्री-पुरुषका एकान्त-संसर्ग सिद्ध ब्रह्मचारियोंको भी कर्त्तव्य भ्रष्ट कर दिया करता है । यदि किसीके सुदृढ़ चरित्रपर यह कोई असर न भी करता हो तो भी लोगोंकी दृष्टिमें शंकास्थल तो बन ही जाता है । अतः आवश्यक है कि अणुव्रती इस विषयमें सजग रहे तथा एकान्तवासके और भी विभिन्न प्रसङ्गोंमें सावधान रहता हुआ लोकापवादसे बचे ।

स्पष्टीकरण

८-१० वर्षतककी बालिकाके विषयमें नियम प्रतिबन्धक नहीं है।

विशेष परिस्थिति—यात्राके प्रसङ्गमें जहाँ स्थानाभाव व अन्य किसी विशेष कारणसे एक कमरेका शयन आवश्यक हो।

घरमें माता, बहन, भाभी आदिके अतिरिक्त कोई तीसरा व्यक्ति हो ही न तब और स्थानाभावकी स्थितिमें नियम लागू नहीं है।

रोगादिकी अवस्थामें अणुव्रतीको किसी महिला व अणुव्रतीके पास किसी महिलाको शयन करना आवश्यक हो तो नियम अबाधक है।

उक्त स्थितियोंमें भी लोक-व्यवहारका पूरा ध्यान रखना अणुव्रतीको उचित है किन्तु विशेष स्थितियोंका नाम लेकर भी यदि कोई अणुव्रती लोक-निंदाका कारण बना तो वह संघ-प्रवर्तक द्वारा उपालम्भका भागी बन सकता है।

६—अकेले पर-पुरुषके साथ न घूमना, न खेलना और न सिनेमा आदिमें जाना।

भारतवर्षकी प्राचीन संस्कृति चरित्र-प्रधान रही है। उसके अनुसार भारतवर्षकी समाज-व्यवस्था भी ऐसी बनी जिसमें स्त्रियों और पुरुषोंका एक कार्य-क्षेत्र न होकर, घर और बाजार स्पष्ट दो कार्य-क्षेत्र रहे हैं। संभवतः इसका प्रमुख लक्ष्य चरित्रकी सुरक्षा ही था। आजकी संस्कृति बहुत कुछ बदलती-सी नजर आ रही है। पाश्चात्य संस्कृतिका अनुसरण करते हुए लोग स्त्रियों और पुरुषोंके कार्य-क्षेत्रकी अभिन्नतामें विश्वास करने लगे हैं। एक भी अणुव्रती इस बातका पक्षपाती तो सम्भवतः न हो कि स्त्रियाँका विकास गृह-कार्यके अतिरिक्त होना ही नहीं चाहिए किन्तु वह इस बातका समर्थक तो हो भी नहीं सकता कि चरित्र गौण है और विकास प्रमुख। उसकी दृष्टि चरित्रको खोकर किसी भी विकास और उत्थानको प्राप्त करनेके लिये प्रस्तुत नहीं होगी। उक्त नियम आने वाली संस्कृतिमें जो प्रत्यक्ष नैतिक पतनका कारण है उस व्यवहार पर सीधा प्रतिबन्ध लगाता है। युग सब के साथ स्त्रियोंको भी स्वतन्त्रता

दे रहा है। वह भी घूँघट और घरकी चहर दिवारियोंके बाहर मुक्त वातावरणमें सांस लेना चाहती है। प्रत्येक वस्तुमें अच्छाई और बुराई दोनों रहती हैं। स्वतन्त्रताके नाम पर कुछ चरित्रकी मर्यादाका भी अतिरेक होने लगा है। स्त्रियों और पुरुषोंका एक साथ घूमना, खेलना, सिनेमा आदि देखने जाना आजकल सभ्यताका रूप लेने लगा है। उस सभ्यतामें स्व और परका भेद भी नगण्य हो गया है। एक महिला अपने पति, पिता व भाईकी तरह अन्य किसी व्यक्तिके साथ भी यत्रतत्र जाने में संकोच नहीं करती। बहुधा ये ही प्रसङ्ग पतनके अनन्य कारण बन जाया करते हैं। तत्प्रकारके प्रसङ्गोंका स्पष्ट निरोध यह नियम करता ही है ; साथ-साथ नियमकी दृष्टिको भी उल्लिखित प्रकारसे समझ लेना प्रत्येक अणुव्रती पुरुष एवं महिलाके लिये अत्यावश्यक है।

१०—वेश्याका नृत्य व गान न कराना।

वेश्या-नृत्य पूर्वजोंसे विरासतमें मिली एक कुप्रथा है। लोग कहते हैं— 'वेश्या नृत्यका विरोध क्यों किया जाता है ? प्राचीन कालमें भी राजा, महाराजा, सम्राट् धनी-मानी, श्रेष्ठजन विवाहादिके उपलक्षमें, अन्य मांगलिक उत्सवों तथा विशेष अवसरों पर वेश्या-नृत्यको महत्व दिया करते थे, राजदरबारोंका तो यह एक प्रमुख अङ्ग रहा है।' उन लोगोंसे पूछना चाहिये - 'यह किसने कब मान लिया था कि प्राचीन कालमें सब अच्छे ही कार्य हुआ करते थे या उस समय किसी कुप्रथाका जन्म ही न हुआ था।' बुराई और अच्छाई सब कालोंके साथ चलती हैं, हो सकता है, वर्तमानकी कुछ प्रथाओंको हम आज नहीं समझ रहे हैं, आनेवाली पीढ़ी समझेगी या आज जो प्रथा इतनी दोषपूर्ण नहीं जितनी आनेवाले युगमें होगी और उस युगके कर्णधार उस विरासतकी निधिको सदाके लिये समाप्त कर देनेका प्रयत्न करेंगे। वेश्या-नृत्यका प्रचलन चाहे कबसे ही हो या कैसा ही रहा हो आज वह सब प्रकारसे हानिप्रद है इसमें कोई भी सभ्य दो मत नहीं हो सकते। अणुव्रती किसी भी समारोहके उपलक्षमें वेश्या-नृत्य न कराये न किसीको ऐसा करनेकी सम्मति दे।

उपहासका विषय तो यह है, वेश्याको मंगलसूचक शकुन भी लोग मानने लगे हैं, उनका विश्वास है विवाहके अन्यान्य मंगल कार्योंकी तरह वेश्या-नृत्य भी एक मंगल कार्य है। किस बुद्धिमानको इस समझ पर तरस नहीं आती होगी कि पुत्र-वधू व पुत्री आदि तो विधवा हो जानेके कारण घरमें एक अपशकुन और अभिशाप है जो कि ब्रह्मचर्य-पालनको अपने जीवनका ध्येय मान चुकी हैं, पर वेश्या, जो पतनकी पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है, एक शुभ शकुन है। यह सब क्या नैतिकताके परम पतनका सूचक नहीं है ?

इस वेश्या-नृत्यकी कुप्रथाके कारण ही, न जाने उन अभिभावकोंकी इस पाप पूर्ण प्रवृत्तिसे कितने युवक कुपथगामी होकर अपना सर्वस्व खोते और संततिका वह पतनमय पथ-प्रदर्शन करते हैं। अणुव्रतीका कर्तव्य है ऐसी रुढ़ियोंका सब प्रकारसे असहयोग किया करें।

स्पष्टीकरण

संगीत-विज्ञा व नर्तकीके गान और नृत्यके विषयमें नियम बाधक नहीं है।

११—वेश्या-नृत्य देखनेके उद्देश्यसे तद्विषयक आयोजनमें सम्मिलित न होना।

वेश्या-नृत्य न करानेकी तरह न देखना भी अणुव्रतीके लिये आवश्यक है। दूसरोंके यहाँ होनेवाले नृत्यको देखने जाना उस प्रथाको प्रोत्साहित करना है। अणुव्रती ऐसा नहीं कर सकता।

स्पष्टीकरण

किसी समारोहमें अन्यान्य कार्यक्रमके साथ यदि वेश्या-नृत्यका भी गौण कार्यक्रम हो, यदि अन्यान्य उद्देश्योंसे अणुव्रतीको वहाँ जाना पड़ रहा हो तो नियम बाधक नहीं होगा। नियमकी शब्द-रचनामें भी उक्त भाव स्पष्ट है, वेश्या-नृत्य देखनेके उद्देश्यसे तद्विषयक आयोजनमें सम्मिलित न होना, फिर भी यहाँ व्याख्यामें विशेष स्पष्ट कर दिया गया है।

सिनेमा, नाटक आदि भी, जिनमें बहुधा वेश्या-नृत्यका भी स्थान रहता है, देखने जाना अनन्तरोक्त स्पष्टीकरणके अन्तर्गत आ जाता है।

१२—किसी स्त्रीको फुसलाकर, धमकाकर, बहकाकर या लुभाकर उसके साथ विवाह न करना।

अणुव्रतीको अविवाहित रहना स्वीकार होगा परन्तु तत्प्रकारके अवैध उपायोंसे वह विवाह करनेका प्रयत्न न करेगा।

नोट—ऊपर बताये गये महिलाओंके नियम पुरुषों पर व पुरुषोंके महिलाओं पर लागू होते हैं।

चरित्रका सम्बन्ध स्त्रियों और पुरुषोंसे समानतया है। नियम कुछ स्त्रियोंको विशेष लक्ष्य करते हुए और कुछ पुरुषोंको विशेष लक्ष्य करते हुए बनाये गये हैं। जिस प्रवृत्तिका जिससे ज्यादा सम्बन्ध था वह नियम उसी वर्गको लक्ष्य करनेवाला हो यह स्वाभाविक था। तत्त्वतः यह नोट स्पष्ट करता ही है, एक पक्षकी ओर संकेत करनेवाले नियम भी समानतया उभय पक्ष पर लागू हैं। उदाहरणार्थ—‘वेश्या व पर-स्त्रीगमन न करना’ यह शब्द-रचनासे पुरुषोंके लिये विधायक है किन्तु तत्त्वतः अणुव्रतिनी महिलाओंके लिये भी पर-पुरुषगमनका निषेध करता है। ‘अकेले पर-पुरुषके साथ न घूमना, न खेलना, न सिनेमा आदि देखने जाना’—यह शब्द-रचना स्त्रियोंके लिये विधायक है किन्तु तात्पर्य, दृष्टि और भाव अणुव्रती पुरुषोंके लिये भी अकेली पर-स्त्रीके साथ घूमने, फिरने व सिनेमा आदि देखनेका निषेध करते हैं। इसी तरह सभी नियमोंका व्यावहारिक भाव समझ लेना चाहिये।

अपरिग्रह अणुव्रत

‘वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते’—प्रमत्त मनुष्य धन-संचयसे रक्षा नहीं पा सकता, अतः अर्थ-लालसाको मिटाना इस व्रतका मुख्य उद्देश्य है। अर्थके बिना गृहस्थ जीवनका निर्वाह नहीं हो सकता, यह मानते हुए भी अन्याय और शोषणपूर्ण तरीकोंसे अर्थार्जन तो छोड़ना होगा। अणुव्रती अपरिग्रहको ही आदर्श माने और परिग्रहको छोड़ता हुआ उत्तरोत्तर आदर्शकी ओर बढ़ता जाय।

इस सम्बन्धमें निम्नाङ्कित नियमोंका पालन अणुव्रतीके लिये अनिवार्य है :—

१—व्यापारार्थ चोर-बाजार न करना।

चोरबाजारी जन-जनमें इतना घर कर गई है कि उसके निवारणके सारे प्रयत्न थोड़े ही मालूम पड़ते हैं। आजके समाजका यह एक ऐसा रोग हो गया है जिसकी चिकित्सा क्या हो, विज्ञान भी अभी तक नहीं बता सका। सारा संसार इस महारोगकी दुःखद अनुभूतिसे कितना संव्रस्त है, इससे मुक्त होनेके लिये कितना उत्कण्ठित है, इस दिशामें प्रकाशकी एक भी किरण दीख पड़ते ही किस प्रकार वह टकटकी लगा देता है, यह ३० अप्रैल सन् १९५० में दिल्लीमें हुए अणुव्रती-संघके वार्षिक अधिवेशनके विषयमें देश और विदेशके समाचारपत्रोंमें हुई चर्चाओं*से भली-भांति जाना जा सकता है।

अणुव्रती यह माने कि चोरबाजार राजकीय व्यवस्था-भङ्ग और एक सामाजिक अपराध है। यह लोभकी पराकाष्ठा और शोषणका प्रतीक है; अनधिकृत धनको हड़पना है। अतः यह स्पष्ट चोरी और डाका है। मुझे अपने ही एक भाईका शोषण कर उपचित (स्थूल) नहीं होना

* पाठकोंकी जानकारीके लिये तद्बिषयक कुछ प्रसङ्ग पुस्तकके अन्तिम भागमें दिये गये हैं।

है, इस आदर्श पर स्वयं अणुव्रती चले और दूसरोंको चलानेका प्रयत्न करे।

स्पष्टीकरण

चोरबाजारमें खरीदना और बेचना सब प्रकारसे हेय है और वह चोर-बाजार ही है। तथापि आजके वातावरणमें स्वाद्य वस्तुएं यदि चोरबाजारसे न खरीदें तो जीना भी बहुत कष्टसाध्य हो जाता है। ऐसी स्थितिमें व्यापारार्थ विशेषण जोड़ देना आवश्यक माना गया है। इससे धनार्जनके हेतु चोर-बाजारका सर्वथा निषेध हो जाता है। बहुत से अणुव्रती खाने-पीने व पहननेकी वस्तुएं भी चोर-बाजारसे नहीं खरीदते। ऐसा करनेमें अनेक कठिनाइयोंका उन्हें सामना करना पड़ता है। यह उनका विशेष आदर्श है। अन्य अणुव्रतियोंको भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

जो व्यक्ति व्यवसायसे सर्वथा मुक्त है अर्थात् निवृत्त है उसके पुत्र-पौत्रादि स्वतंत्रतापूर्वक व्यवसाय चलाते हैं तो उस व्यक्तिके अणुव्रती होनेमें बाधा नहीं मानी जायगी।

जिस व्यवसायमें अनेक हिस्सेदार हैं और यदि वे ब्लैक छोड़ना नहीं चाहते तो अणुव्रतीको या तो उस व्यवसायसे अलग होना पड़ेगा या वह ब्लैककी सम्पत्तिसे कुछ भी हिस्सा न ले सकेगा और न अपने हाथोंसे ब्लैक कर ही सकेगा।

यदि अणुव्रती किसी फार्ममें मैनेजर व कार्यकर्ता है तो वह अपने हाथों चोरबाजार नहीं कर सकता, न ऐसा करनेके लिये दूसरेको आदेश ही दे सकता है।

जिस वस्तुका जो मूल्य राज्यने निर्धारित कर दिया है किसी रूपमें उससे अधिक मूल्य लेना ब्लैक माना गया है।

मकान किरायेके सम्बन्धसे पगड़ी सिलामी आदि लेना ब्लैकमें सम्मिलित है।

व्याज विषयक राजकीय निर्धारणके सम्बन्धमें यह नियम लागू नहीं।

जो कपड़ा कन्ट्रोल रेटसे खरीदा गया हो, उसे रंगाकर या सिलवा-
कर बेचनेके विषयमें ब्लैक विषयक उक्त नियम प्रतिबन्धक नहीं है।

जो वस्तु व्यापारके लिये नहीं किन्तु किसी व्यापारिक साधन
विशेषके रूपमें खरीदी गई है उसके खरीदनेके सम्बन्धमें उक्त नियम
लागू नहीं है। उदाहरणार्थ—मिल, फैक्टरी आदिके पुर्जे व अन्य सामग्री।
किन्तु इस अबाधकताके विषयमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह
साधन मात्रसाधन ही हो, यदि वही साधन वस्तु-रूपमें परिणत होता
हो तो यह नियम उसके ब्लैकसे खरीदनेमें बाधक होगा। जैसे—सूत, रूई
आदि। सूता व रूई कपड़ा बनानेके लिये खरीदे जाते हैं तो भी कपड़ा
उनसे कोई पृथक वस्तु नहीं है, सूत व रूई ही कपड़ेका रूप लेते हैं। इसी
तरहसे आइस-कण्डीके उद्देश्यसे खरीदी जानेवाली चीनीके विषयमें समझ
लेना चाहिए।

जो वस्तु घर खर्चके लिये खरीदी गयी हो, वह किसी कारणवश यदि
बेचनी पड़ती है तो ब्लैकसे नहीं बेची जा सकती, चाहे वह ब्लैकमें ही
खरीदी हुई क्यों न हो ?

जिस वस्तुके खरीदनेके समय कन्ट्रोल नहीं था, बादमें कन्ट्रोल हो
गया, तबसे अणुव्रती कन्ट्रोल-रेटसे अधिक दाम नहीं ले सकता।

२—घूस न लेना।

सर्वसाधारणमें जिस प्रकार ब्लैक मार्केटका प्लेग फैला है उसी तरह
राजकर्मचारियोंमें रिश्वतखोरीकी महामारी फैली हुई है। राजकर्मचारी
जनताको ब्लैक मार्केटिंगके नामसे कोसते हैं और जनता उन्हें घूसखोरी
के नामसे। अपनी-अपनी कमजोरीके कारण एक दूसरेके सामने सर
भुका देते हैं, कोई भी एक दूसरेका इलाज नहीं कर सकता। इन्हीं दो
बुराईयोंमें देशके नैतिक पतनका परम दर्शन होता है। अणुव्रती क्लर्क
से लेकर प्रधान मंत्री पद तकके किसी पद पर होता हुआ, किसी
प्रकारकी घूस नहीं ले सकता। क्या ही अच्छा हो यदि देशके मात्र
कर्मचारी अणुव्रती हो जायें या देशके गणमान्य व्यक्तियोंका ध्यान

अणुप्रतियोंकी ओर आकृष्ट हो और वे चाहें, कोई भी पदाधिकारी बिना अणुव्रती न बनाया जाये।

नियम अक्षरोंमें छोटा होते हुए भी व्यापक बहुत है। जितनी प्रकार के नौकरी पेशे हैं, एक भी सम्भवतः नियमका विषय होनेसे अछूता नहीं रहता। यह सहज ही कल्पनामें आ सकता है कि नौकरी पेशेसे घूसखोरी बिदा हो जाती है तो स्वतः न्यायपूर्ण व्यवस्थाका निर्माण हो जाता है।

स्पष्टीकरण

किसी व्यक्तिके कार्यको कर देनेका वादा कर अवधानिक रूपसे रूपया आदि लेना या लेनेका वादा करना घूस है।

३--दहेज, मुकलावा, छूछक आदि दूसरोंके यहाँ देखने न जाना और न अपने तत्वावधानमें आये दहेज आदिको सजाकर दूसरोंको दिखलाना।

सामाजिक प्रथाओंके कारण भारतवासियोंका जीवन बहुत कुछ बोझिल हो रहा है। बहुतसे व्यक्ति बहुत-सी दुष्प्रथाओंका दुष्परिणाम समझने भी लगे हैं तो भी सामाजिक आक्रोशके कारण बहुत सी रुढ़ियां तत्प्रकारसे निभानी पड़ती हैं। आवश्यकता तो थी अणुव्रतीके लिये दहेज आदि लेनेका ही प्रतिबन्ध हो किन्तु कई दृष्टियोंसे चालू वातावरणमें यह कुछ कठोर माना गया।

पिता अपनी पुत्रीको कुछ भी दे, यह प्रत्येक पिताका स्वतन्त्र विषय है। चाहे उसे दहेज कहा जाये या और कुछ। बड़ी बुराई तो यह है कि वही देना एक दिखानेका रूप लेकर पिताके सर पर एक समस्या हो बैठता है। यह नियम उस दिखानेका मूलोच्छेद करता है इसके अनुसार अणुव्रती न दूसरोंके यहाँ दहेज आदि देखने जा सकता है न अपने घरमें आये और न अपने घरसे दिये जानेवाले दहेज आदिको सजाकर प्रदर्शनका रूप दे सकता है। इससे समाजमें दहेजादिको लेकर होने-

वाला देखादेखीका संघर्ष टलेगा और इन प्रथाओंमें आई बुराइयोंकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित होगा ।

४—अपने लोभके लिये रोगीकी चिकित्सामें अनुचित समय न लगाना ।

नियम वैद्य व डाक्टरोंसे सीधा सम्बन्ध रखता है । चिकित्सकोंके व्यवसायमें आई बुराइयोंमें यह एक बड़ी बुराई है, अनैतिक आचरण है । यदि अणुव्रती वैद्य हो तो उसे इससे सर्वथा बचना होगा । इस व्यवसाय में और भी अनेकों बुराइयां हैं जैसे—नकली दवाइयोंको काममें लेना, होस्पिटल आदिमें काम करते हुए मरीजोंसे अतिरिक्त फीस लेना व दवाइयोंका दुरुपयोग करना आदि । अणुव्रती चिकित्सक तत्प्रकारकी समस्त बुराइयोंसे बचता रहे । अणुव्रती संघका ध्येय किसी भी व्यवसायमें आई समस्त बुराइयोंको दूर करनेका है ; यद्यपि अभी तक ऐसे नियमोंकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है जो अलग-अलग व्यवसायसे सीधा सम्बन्ध रखते हों । अभी तक ऐसे नियमोंको ही विशेष प्रश्रय दिया गया है जो साधारणतया सभी व्यक्तियोंसे सम्बन्धित हों या व्यापारी आदि जिन वर्गोंमें अभी अधिक प्रसार हो रहा है । अन्य वर्गोंमें जैसे-जैसे प्रसार होगा वैसे-वैसे आवश्यक नियम और बन सकेंगे ।

५—एक दिनमें खाद्य-पेयके ३१ से अधिक द्रव्योंका व्यवहार न करना ।

खाद्य-संयम भी अनेक दृष्टियोंसे लाभप्रद है । प्रायः सभी धर्म-शास्त्रोंमें इस पर जोर दिया गया है, और आत्म-साधनाका एक असाधारण अंग बताया गया है, महात्मा गांधीने शो अस्वादवृत्तिको अपने ७ व्रतोंमें स्वतंत्र व्रतका स्थान दिया है । स्वास्थ्य और आजके अन्नाभाव में सामाजिक दृष्टिसे भी इसका महत्त्व कम नहीं है । एक ओर जब मनुष्योंको भर पेट खानेके लिये जैसा-जैसा अन्न भी नहीं मिल रहा है,

दूसरी ओर यदि ३२ भोजन और ३३ तरकारीकी किंवदन्तीको चरितार्थ किया जाता है तो यह एक बहुत बड़ा सामाजिक असंतुलन होता है जो आजके समता प्रधान युगमें अखरने जैसा भी होता है। ३१ की संख्या एक मझोली संख्या है जो व्यक्ति दिनमें ५ प्रकारके फल खा लेते हैं, ५-७ प्रकारकी सब्जी खा लेते हैं। २-४ प्रकारकी मिठाई और ५-७ प्रकारकी खटाई और पानी रोटीसे लेकर तीन बारके भोजनमें बीसों पदार्थ खा लेते हैं, उनकी आदतमें यह संख्या एकाएक बहुत संकोच ला देती है। जो व्यक्ति रोटी, शाकादि ५-१० पदार्थोंसे अपना निर्वाह करते हैं उनकी अपेक्षा यह संख्या बहुत बड़ी है किन्तु वर्तमानमें जिस वर्गमें अधिकतया अणुव्रतोंका प्रसार हो रहा है, उसकी दृष्टिसे यह संख्या उपयुक्त ही है। भविष्यमें इसका कम होते रहना तो संभावित है ही।

द्रव्यकी क्या परिभाषा है ? यह जाननेके लिये नीचे आचार्य श्री द्वारा निर्धारित कुछ द्रव्य परिभाषाके सूत्र दे दिये जाते हैं, जो एतद्विषयक जानकारीके लिये आवश्यक हैं—

खाद्य-पेय द्रव्य परिभाषा

(१) स्वतन्त्र नाम स्वतन्त्र द्रव्यका सूचक है जैसे—दूध, दही, चावल, चीनी, शकर आदि।

(२) किसी नामके साथ कोई ऐसा नाम संयुक्त होता हो जो उस पदार्थका मूल कारण हो और उसे वह अन्य पदार्थोंसे पृथक् करता हो तो वह शब्द संयुक्त नाम स्वतन्त्र द्रव्य है; जैसे—बाजरेकी रोटी, गेहूँकी रोटी, मूंगका पापड़, मोठका पापड़, आमका पापड़ आदि, अर्थात् रोटी इन सामान्य नामोंके होते हुए भी पूर्व संयोजित शब्दके कारण उपर्युक्त एक एक स्वतन्त्र द्रव्य है।

स्पष्टीकरण—नियम नं २ की परिभाषामें गायका दूध और भसका दूध, कुँका पानी और बरसातका पानी पृथक्-पृथक् द्रव्य होते हैं

तथापि व्यावहारिकताको ध्यानमें रखते हुए ये एक ही द्रव्य माने गये हैं अर्थात् उक्त प्रकारका दूध एक द्रव्य, उक्त प्रकारका पानी एक द्रव्य ।

(३) जिस नामके साथ ऐसा विशेषण लगता हो जो संस्कार-भेदका सूचक हो वह नाम अपने विशेषण सहित स्वतंत्र द्रव्य है जैसे—लुक्खी रोटी, चोपड़ी रोटी, सेका हुआ पापड़, तला हुआ पापड़, मिर्च लगाया पापड़, फीके चावल, मीठे चावल आदि ।

(४) जो दो द्रव्य मिलाकर स्वभावतः खाये जाते हैं किन्तु उनके मेलसे कोई नई संज्ञा नहीं बनती तो वे सब पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। जैसे—घी-खीचड़ी, घी-चीनी-घाट, दूध-चीनी, दाल-चावल आदि ।

(५) दो या बहुत द्रव्य मिलकर यदि एक व्यावहारिक संज्ञाको धारण कर लेते हैं तो वह एक संज्ञा (नाम) एक द्रव्य है। जैसे—खीर, आमरस, मेवेकी खिचड़ी, चूरमा, पान, शाक आदि ।

स्पष्टीकरण—द्रव्य घटानेकी दृष्टिसे यदि कोई अस्वाभाविक मेल मिलाया जाता है तो वे द्रव्य पृथक्-पृथक् माने जायेंगे जैसे—खिचड़ीमें सुपारी ।

(६) सजातीय फलादि एक द्रव्य हैं। जैसे—कलमी आम, लंगड़ा आम, मीठा पान, मधई पान ।

(७) किन्हीं दो पदार्थोंका मूल तत्त्व एक है फिर भी यदि आकार या संस्कारादि भेदसे नाम भिन्न-भिन्न हैं तो वे सब स्वतन्त्र द्रव्य हैं जैसे—चीनी, मिश्री, वतासा ; मावेका पेठा, मावेका पेड़ा ; बूँदिया, बूँदियाका लड्डू ; पूड़ी, फलका, टिकड़ा, रोटी आदि ।

६—रुपये लेने खोलकर कन्या, पुत्र आदिका वैवाहिक सम्बन्ध न करना ।

पशुओंकी तरह कन्या व पुत्र आदिका भी मोल होने लगा है। लोभी माता-पिता अच्छी तरहसे सौदा करके कन्या, पुत्रादिका सम्बन्ध करते हैं। वहाँ सन्तानका स्वार्थ गौण कर दिया जाता है, चाहे कन्याके लिये वर या घर अनुपयुक्त है, चाहे पुत्रके लिये वधू

शिक्षित, अशिक्षित, गूंगी या बहरी है, माता पिताको धन मिलना चाहिये। अधिक बतानेकी आवश्यकता नहीं, प्रत्येक सविवेक व्यक्ति स्वतः समझता है, यह कितने मानसिक पतनका परिणाम और सामाजिक कुप्रथाकी पराकाष्ठा है। अणुव्रती किसी भी स्थितिमें इस अमानवीय प्रवृत्तिका आचरण नहीं करेगा।

७—(पुरुषोंके लिये) एक अंगूठीके अतिरिक्त आभूषण न पहनना।

(स्त्रियोंके लिये) धर्मस्थानमें १३ तोलेसे अधिक सोना एक साथ न पहनना।

स्पष्टीकरण—घड़ी, बोताम आदि आभूषणमें नहीं माने गये हैं।

नियम सादगीका सूचक है। अंगूठीकी अबाधकता कुछ तत्व रखती है, बहुतसे लोगोंका ऐसा परामर्श रहा। यद्यपि अंगूठी आभूषण है, अणुव्रतीके लिये इसका अपवाद न भी हो तो भी ऐसी कोई बात नहीं है किन्तु यह एक विशेष आवश्यकता भी रखता है। यात्रा आदि प्रसङ्गोंमें कई बार रुपये पैसे आदि खो जाते हैं, लूट जाते हैं या व्यक्ति स्वयं किसी कारणसे इधर उधर रह जाता है, ऐसी स्थितियोंमें अंगूठीका बहुत बड़ा उपयोग होता है, वैसे किसी भी आभूषणका उपयोग हो सकता है पर छोटेसे छोटा और व्यवहारोचित आभूषण अंगूठी ही है अतः इसकी अबाधकता रखनी आवश्यक समझी गई।

यह प्रतिबन्ध केवल पुरुषोंपर ही है। स्त्रियोंके विषयमें भी कोई उचित प्रतिबन्ध आवश्यक था किन्तु विभिन्न वेष-भूषा, विभिन्न रहन-सहन आदिको ध्यानमें रखते हुए आचार्यवरने यह विषय विचाराधीन ही रखा था। एक अस्थायी नियम अणुव्रती-संघके हांसी अधिवेशनपर आचार्यवरने निर्धारित किया है जो उक्त नियमका एक अङ्ग बन ही चुका है।

महिलाओंमें गहनेका अनुराग अधिक है। उन्हें गहना कम पहनने की बात अधिक प्रिय नहीं लगती। इस नियमसे उन्हें इस दिशामें

अभ्यस्त होनेका अवसर प्राप्त होगा और क्रमशः गहनेके मोहसे दूर होती रहेंगी। सम्भव है निकट भविष्यमें एतद्विषयक स्थायी नियम भी जनताके सम्मुख आ जायँ।

स्पष्टीकरण

गहनेकी सुरक्षाके लिये उसे कभी पहन लेना पड़ता हो तो नियम बाधक न होगा।

८—वोट—मत व साक्षी देनेके लिये रुपये न माँगना और न लेना।

मालूम होता है आजके मनुष्यने अपनी सारी उपयोगिता पैसेके सौदे पर रख दी है। उसका कर्त्तव्य पैसा पैदा करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक नागरिक होनेके नाते या म्यूनिसिपल बोर्ड या असेम्बली आदिका सदस्य होनेके नाते उसे बहुतसे विषयोंमें मत देनेका अधिकार होता है। वह अधिकार भी इसलिये है कि वह अपनी बुद्धि, न्याय और औचित्यका सुन्दर उपयोग करे, किन्तु वह अपने इन सारे मानवीय आदर्शोंको अर्थार्जनका प्रतीक मान उनकी विडम्बना करता है। यही तो कारण है, चुनावोंके अवसरसे जनतन्त्र सही तात्पर्यसे पूंजीतन्त्र बन जाता है। आजका विचारक वर्ग इस अव्यवस्थासे कितना चिन्तित है, उनका हृदय ही इस बातकी अनुभूति करता होगा। छोटी सी मानी जानेवाली इसी एक भूलके परिणाम स्वरूप कितनी बड़ी राजनैतिक उथल-पुथल प्रायः सभी राष्ट्रोंमें आये दिन होती रहती है और भारतवर्ष में भी निकट भविष्यमें ही होनेवाले चुनावोंके विषयमें तद्रूप आसार स्पष्ट नजर आने ही लगे हैं। ऐसी स्थितिमें अणुव्रती-संघका यह नियम पानी आनेसे पहले बांध लगा देने जैसा होगा।

कुछ लोग तो असत्य गवाही देनेका पेशा ही बना लेते हैं, कुछ सत्य साक्षी भी किसी मूल्यपर देना चाहा करते हैं। अणुव्रती उक्त प्रवृत्तियोंसे वचता रहे।

९—जुआ न खेलना।

जूवेकी बुराईयोंसे अधिकांश व्यक्ति परिचित हैं। इस प्रकारके

असंदिग्ध विषय पर अधिक विवेचन अनावश्यक है। मनुष्यके विविध पतनोंका यह प्रवेश द्वार है। इसमें प्रविष्ट होनेसे अणुव्रती स्वयं बचे और अन्य व्यक्तियोंको भी बचानेका अहिंसात्मक प्रयत्न करे।

स्पष्टीकरण

सोलही, नकसी, आदि सभी राज्य निषिद्ध प्रकार नियमकी परिभाषामें आ जाते हैं।

१०—तपस्या (उपवास) के उपलक्षमें वस्त्र, आभूषण, चीनी, मिश्री आदि न लेना न देना।

उक्त नियम यद्यपि किसी एक समाज विशेषसे अधिक सम्बन्धित है तथापि इसका तात्पर्य यह नहीं हो जाता कि अणुव्रती-संघ किसी समाज विशेष तक ही सीमित है। उसका ध्येय व्यापक है, ज्यों-ज्यों जिस-जिस समाजमें इसका प्रसार प्रारम्भ होगा त्यों-त्यों उस समाज सम्बन्धी विशेष नियम बनते रहेंगे ऐसी इस नियमके पीछे दृष्टि है। जैन समाजमें यह प्रथा विशेषतः प्रचलित है, पुरुष व महिलायें लम्बे-लम्बे उपवास करती हैं। उपवासोंके अन्तमें बड़े-बड़े समारोह होते हैं मातृ पक्ष व श्वसुर पक्षसे रुपये गहने आदि दिये जाते हैं। आत्म-साधनाके साथ द्रव्यका यह प्रलोभन तपस्याकी प्रभाको क्षीण कर देने-वाला होता है। चूंकि जैन समाजमें अणुव्रती-संघका अपेक्षाकृत अन्य समाजोंके अधिक प्रचार अभी हो रहा है। अतः इस प्रथाको समाप्त कर देनेके उद्देश्यसे इस नियमको संघकी मूल नियमावलीमें ही स्थान दे दिया गया है।

तपस्या विषयक जीमनवारका निषेधक नियम अहिंसा अणुव्रतमें आ चुका है; यह नियम आभूषण आदि लेने और देनेका निषेध करता है। दोनों नियम सम्बन्धितसे हैं। दोनों ही भावोंको मिलाकर एक ही बन सकता था किन्तु यह मानते हुये कि जीमनवार आदि करना अग्नि वनस्पति आदिकी हिंसासे अधिक सम्बन्धित है और आभूषण

आदि लेना-देना अपरिग्रहसे । अतः प्रकरण भेदके कारण दो नियमोंका होना स्वाभाविक था ।

अपनी तपस्याके उपलक्षमें न लेना और अपनी ओरसे किसीकी तपस्याके उपलक्षमें न देना यह नियमकी शब्द-रचनामें स्पष्ट है। इसलिये अपने किसी निजीकी तपस्याके उपलक्षमें यदि कोई व्यक्ति चीनी, मिश्री, नारियल व चांदीकी तस्तरी (थाली) आदि अपने कुटुम्ब, अपने समाज या गांवमें बाँटता है, वितरण करता है तो अणुव्रती, यदि वह अपने घरमें प्रमुख है तो उसे ग्रहण नहीं कर सकता है और न उस तरह स्वयं वितरण कर सकता है। ऐसा इस नियमका विधान है ।

११—दूषित एवं घृणित तरीकोंसे नौकरी, ठेका, लाइसेन्स आदि प्राप्त न करना ।

साध्यकी तरह साधन भी समुचित व नैतिक हो, यह एक परम आदर्श है। इसे यथासाध्य जीवनमें उतारते रहना अणुव्रतीका ध्येय होगा। बहुतसे पतित्वात्मा तुच्छ स्वार्थोंकी पूर्तिके लिये निंद्यसे निंद्य और घृणितसे घृणित कर्म भी करनेके लिये उतारू हो जाया करते हैं। वे अपनी स्त्री तकको दुराचारके लिये प्रोत्साहित करनेमें नहीं हिचकिचाते और न तत्प्रकारके अन्य कर्मोंके आचरणमें भी शर्म खाते हैं। अणुव्रती मनुष्यताको बेचकर किसी ओर भी आकर्षित नहीं हो सकता ।

१२.—होटल, रेस्टोरैण्टका व्यापार करते हुए मांस, मछली, अण्डे आदिका भोजन न पकाना, न परोसना और न पीनेको मद्य देना ।

मांस भक्षण निषेधके विषयमें सारा दृष्टिकोण तत्सम्बन्धी नियमकी व्याख्यामें स्पष्ट किया जा चुका है। भोजनके रूपमें उसका निषेध कठिन तथा कष्टसाध्य माना जा सकता है, किन्तु होटल आदिका व्यवसाय बहुत हो अल्पसंख्यक व्यक्तियोंसे सम्बन्ध रखता है। अतः अणुव्रतियोंके लिये तत्प्रकारका निषेध अव्यवहार्य नहीं माना गया है। वह इस प्रकारके व्यवसायोंसे सहजहृद् बच सकता है ।

१३—घर-भूमि, सोना-चांदी, धन-धान्य, द्विपद-चौपद तथा घरका सामान और फुटकर वस्तु इत्यादि परिग्रहको परिमाणसे अधिक संग्रह न करना ।

(अपने-अपने निर्धारित परिमाण संघ-प्रवर्तकको निवेदित करने होंगे)

धन-संग्रहकी वृत्ति आजकी सारी सामाजिक अव्यवस्थाकी जनयित्री है । इसी अव्यवस्थाको दूर करनेके प्रयत्न ही मार्क्सवाद आदि दर्शन हैं । आध्यात्मिक दृष्टिसे धन-संग्रहकी लालसा आत्मपतनका अनन्य हेतु है । इसका निरोध करनेके हेतु ही प्राचीन ऋषि, महर्षि व निर्यन्थोंने अपरिग्रहवादका उपदेश दिया । आज भी अधिकांश धर्मगुरु तथा धर्म-शास्त्र मानव-समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित करते रहते हैं । अणुव्रती-संघ इस विषयमें जो संकेत करता है उसका प्रारम्भिक नियम यह है । अणुव्रत सिद्धान्त कहता है—“प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओंको सीमित करे, पूंजीवाद जैसी कोई समस्या ठहर नहीं सकती ।” अणुव्रती-संघका अंतिम ध्येय होगा, व्यक्तिकी आवश्यकताओंपर निश्चित नियंत्रण कर देना । तत्पश्चात् उस नये अणुव्रती-समाजमें आर्थिक विषमताको सम्भवतः कोई स्थान नहीं रहेगा । किन्तु यह कल्पना कबतक मूर्त रूप लेगी यह भविष्यपर निर्भर है ।

कल्पनाका प्रारम्भिक स्वरूप उक्त नियममें प्रस्फुटित हुआ है । इसके अनुसार प्रत्येक अणुव्रतीको अपनी लालसा जीवन भरके लिये सीमित कर लेनी होगी और वह सीमा संघ-प्रवर्तकको निवेदित कर देनी होगी । इससे धन-संग्रह करनेकी उत्कट अभिलाषाका निरोध होगा । आजकी स्थितिमें अन्य किसी व्यवहारिक मार्गके अभावमें यह नियम वस्तुतः उपभोगी होगा ।

साधनाके चार नियम

१—प्रति वर्ष एक अहिंसा दिवस मनाना

अहिंसा अणुव्रतवादकी रीढ़ है। प्रत्येक समस्याका हल अहिंसात्मक ही सोचा जाये यह अणुव्रतवादका ध्येय है। आवश्यक है अणुव्रतीकी अहिंसामें दृढ़ निष्ठा हो और वह निष्ठा दूसरोंके लिये भी अहिंसा की ओर आकर्षित होनेका कारण बने। अहिंसा दिवस मनानेका यह नियम इत्यादि दृष्टिकोणोंसे उपयोगी है।

अहिंसा दिवस का कार्यक्रम

(१) उपवास अवश्य हो।

(२) किसी भी मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पर साधारण या विशेष प्रहार न करें।

(३) पशुओंकी सवारी न करें।

(४) असत्य मात्रका त्याग करें।

(५) पूर्ण ब्रह्मचर्यका बालन करें।

(६) किसीको कटु वचन न कहें।

(७) अपने बचावके लिये भी हिंसात्मक प्रत्याक्रमण न करें।

(८) घण्टे भरके लिये आध्यात्मिक स्वाध्याय करें।

(९) आधा घण्टा के लिये आत्म-चिन्तन करें जिसमें वर्ष भरमें की हुई बुरी प्रवृत्तियों का संस्मरण कर आत्म-निन्दा करें।

(१०) अपने माता-पिता, भाई तथा अन्य कुटुम्बी व अपने नौकर, कर्मचारी आदि जितने व्यक्ति निरन्तर सम्पर्कमें आनेवाले हैं, उनमेंसे जो मिलें उनसे साक्षात्, न मिलें उनसे अपनी भावनासे, वर्ष भरमें हुए असद् व्यवहारके लिये क्षमा-याचना करें और उन्हें अपनी ओरसे क्षमा-प्रदान करें।

(११) अन्य लोगोंमें भी अणुव्रत-भावना का यथासम्भव प्रचार करें।

२—प्रतिमास एक उपवास करना, यदि साध्य न हो तो प्रतिमास दो दिन एक-एक बारसे अधिक न खाना ।

प्रतिमास एक या दो उपवास कर लेना आत्म-शुद्धिके साथ-साथ शरीर शुद्धि के लिये भी उपयोगी है । वर्तमानकी अन्न समस्याका भी यह एक सजीव हल है । उपवासका तात्पर्य है सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिन सूर्योदय तक जलके अतिरिक्त कुछ नहीं खाना पीना ।

उपवासकी असाध्यतामें दो एकासनका विधान है । एकासनका अर्थ एकासनस्थित एक बारसे अधिक सूर्योदयसे सूर्योदय तक न खाना ।

३—प्रतिदिन कमसे कम १५ मिनट आत्म-चिन्तन करना ।

आत्म-अवलोकन मात्र ही इस बातकी ओर संकेत करता है । व्यक्ति दोषोंसे मुक्ति चाहता है वह आत्मस्थित एक-एक दोषको प्रतिदिन ध्यान-पूर्वक देखता है और उसे बिदा कर देनेकी शक्ति बटोरता है । ध्यान किस प्रकारसे किया जाय, इसके लिये व्यक्ति स्वतंत्र है । जीवनगत बुराइयों का अवलोकन उसमें होना चाहिये । सर्व साधारणके लिये आत्म-चिन्तन का एक साधन सम्मुख रहे इसलिये आचार्यवरने एक 'आत्म-चिन्तन' निर्धारित भी कर दिया है जो नीचे दिया जाता है । अणुव्रती उसके आधारसे या उस प्रकारसे प्रतिदिन आत्म-चिन्तन करे ।

आत्म-चिन्तन

(१) भौतिक सुखोंमें आसक्त होकर आत्मोन्नति के प्रमुख लक्ष्यको भूला तो नहीं ?

(२) स्व-प्रशंसा और पर-निन्दासे प्रसन्नता तो नहीं हुई और स्व-निन्दा व पर-प्रशंसासे अप्रसन्नता तो नहीं हुई ?

(३) अपने मुँहसे अपनी बड़ाई तो नहीं की ?

(४) किसीका भूठा पक्ष लेकर विवाद तो नहीं फैलाया और किसीको अपमानित करनेकी कोशिश तो नहीं की ?

(५) किसी की निन्दा तो नहीं की ?

(६) किसी की उन्नति व ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्या तो नहीं की ?

(७) दूसरोंकी बराबरी करनेके लिये नैतिक जीवनसे गिरानेवाले कर्म तो नहीं किये ?

(८) किसीके साथ अशिष्ट व्यवहार तो नहीं किया, बोलनेमें अश्लील शब्दोंका प्रयोग नहीं किया ?

(९) बड़े बुद्धोंकी अवहेलना या उनके साथ अविनय तो नहीं किया ?

(१०) अविनय, भूल या अपराध हो जाने पर क्षमा-याचना की या नहीं ?

(११) बालक-बालिकाओंको कहना न मानने पर निर्दयतासे पीटा तो नहीं ?

(१२) झूठ बोलकर अपना दोष छिपानेकी कोशिश तो नहीं की ?

(१३) स्वार्थ से या बिना स्वार्थसे किसी झूठी बातका प्रचार तो नहीं किया ?

(१४) किसीकी कोई वस्तु चुराई तो नहीं ?

(१५) पर-स्त्रीको पाप दृष्टिसे तो नहीं देखा या पर-पुरुषको पाप-दृष्टिसे तो नहीं देखा ?

(१६) अप्राकृतिक मैथुन तो नहीं किया ?

(१७) धन पानेके लिये कोई विश्वासघात आदि अमानवोचित काम तो नहीं किया ।

(१८) किसीके साथ कोई मानसिक, वाचिक व कायिक दुर्व्यवहार तो नहीं किया ?

(१९) आज मुझे क्रोध तो नहीं आया और आया तो क्यों, किस पर और कितनी बार ?

(२०) किसीको ठगने या फँसाने की कोशिश तो नहीं की ?

(२१) भांग, गांजा, सुल्फा आदि नशीली वस्तुओंका प्रयोग तो नहीं किया ?

(२२) अपने विचारोंसे सहमत नहीं होने वालोंसे द्वेष तो नहीं किया ?

(२३) जिह्वाकी लोलुपतावश अधिक तो नहीं खाया पीया ?

(२४) ताश, चोपड़, केरम आदि खेलोंमें समयको तो बर्बाद नहीं किया ?

(२५) घरके या पड़ोसके व्यक्तियोंसे झगड़ा तो नहीं किया ?

(२६) किन्हीं अनैतिक या अप्रिय कामोंमें भाग तो नहीं लिया ?

(२७) किसीके साथ व्यक्तिगत या सामूहिक रूपसे कोई षड्यंत्र या पाखण्ड तो नहीं रचा जो देश, समाज व वर्गकी अशांतिके साथ स्वयंके लिये आत्म-ग्लानिका कार्य हो ?

(२८) फिजूलखर्ची तो नहीं की ?

(२९) ब्लेकमें कोई वस्तु खरीदी या बेची तो नहीं ?

(३०) जुआ, सट्टा, फाटका आदिमें प्रवृत्ति तो नहीं की या किसीको प्रेरणा तो नहीं दी ?

(३१) विधवा स्त्री आदिको अपशब्दों से अपमान करने का काम तो नहीं किया ?

नारी समाज (विशेष)

(३२) आभरण आदि बनानेके लिये पतिको बाध्य तो नहीं किया ?

(३३) सास, ननद, जेठानी, देवरानी आदि पारिवारिक स्वजनोंके साथ ईर्ष्या, द्वेष व कलह तो नहीं किया ?

(३४) सौत, जेठानी, ननद आदि दूसरोंके बच्चोंके साथ दुर्व्यवहार तो नहीं किया ?

(३५) किसी विधवा बहिनका अपशब्दोंसे अपमान व तिरस्कार तो नहीं किया ?

(३६) बनाव, झूठार और विषय-वासनामें शक्ति तथा समयका अपव्यय तो नहीं किया ?

(३७) दिन भरमें कौन-से अनुचित, अप्रिय एवं अवगुण पैदा करने वाले कार्य किये और कौनसी सुशिक्षा ग्रहण की ?

४—प्रतिमास कमसे कम १५ दिन ब्रह्मचर्यका पालन करे ।

भारतीय संस्कृतिमें ब्रह्मचर्यका जो महत्व है, वह वाणीका विषय नहीं हो सकता किन्तु यह वैज्ञानिक तथ्यसे भी शून्य नहीं है कि 'विकार' एक शक्ति है और वह किसी भी महत्वपूर्ण कार्यके लिये प्रयुक्त की जा सकती है । यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है । संसारके जितने महापुरुष हुए हैं उनमें अधिकांश ब्रह्मचारी हुए हैं अर्थात् उनकी वैकारिक शक्ति उनके जीवनके उच्चतम ध्येयमें लगी है । अतः पूर्णतः ब्रह्मचारी हो जाना अणुव्रतियोंका ध्येय होगा । वह १५ दिनकी मर्यादाको पूर्णतः निभाते हुए क्रमशः पूर्ण आदर्शकी ओर अग्रसर होते रहें ।

अणुव्रत-आन्दोलन

(ग्यारह सूत्री कार्यक्रम)

१—संकल्पपूर्वक हत्या न करना, आग न लगाना, जनताके जीवनके लिए आवश्यक साधनोंको सामूहिक अनिष्टकी भावनाओंसे नष्ट न करना ।

(क—धन चुरानेके लिए, डाका डालनेके लिए, अधिकार या सत्ता छिननेके लिए, राजनैतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत स्वार्थकी पूर्तिके लिए, साम्प्रदायिक विद्वेष तथा प्रतिशोधके लिए जो हिंसाकी जाये वह संकल्पपूर्वक हिंसा है ।)

(ख—व्यक्तिगत, समाज तथा राष्ट्रकी सुरक्षा और अत्याचारका प्रतिकार करनेके लिए होनेवाली हत्याका इसमें समावेश नहीं होता है ।)

२—चोरी के उद्देश्यसे दूसरे की चीज न उठाना और न डाका डालना ।

३—जुआ न खेलना ।

४—रुपये खोलकर कन्या, पुत्र आदिका वैवाहिक सम्बन्ध न करना ।

५—मांस न खाना, मद्य न पीना ।

६—धूम्रपान न करना ।

७—वेश्या व पर-स्त्री गमन न करना ।

८—प्रतिमास कमसे कम तेरह दिन ब्रह्मचर्य पालन करना ।

९—क्रय-विक्रयमें झूठा तोल-माप न करना ।

१०—किसी चीजमें मिलावट कर या नकलीको असली बताकर न बेचना । (मिलावट जैसे—दूधमें पानी, घी में वेजीटेबल घी और आटेमें सिंगराज । नकलीको असली जैसे कलचर मोतीको असली बताना) ।

११—घोट (मत) व साक्षी देनेके लिए रुपये न लेना ।

अणुव्रत नियमावली के विषय में प्रारम्भ काल में यह सोचा जाता था कि इन नियमों को और भी कसने की गुंजायस है। किन्तु ज्योंही नियम व्यवहारमें आये त्योंही परिणाम कुछ और ही निकला, जो नियम समुचित मानवता तक पहुँचने के लिए साधनरूप माने गए थे, वे स्वयं एक दुस्साध्य साध्य बन गए। चूँकि जनता का नैतिक स्तर जिस नीची सतह तक पहुँच चुका था और आज का जो वायुमंडल था उसमें इन नियमों को जीवन में उतार कर चलना टेढ़ी खीर था भी। बहुत से व्यक्ति तो इन नियमों को दुस्साध्य ही नहीं किन्तु प्रस्तुत वातावरण में असाध्य मान बैठे। दिल्ली में जबकि एक सार्वजनिक आयोजन में आचार्यवर के तत्वावधान में नियमावली पढ़कर सुनाई गई, श्री चक्रधर शरण (सेक्रेटरी राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद) बोले—“स्वामीजी ! पर्याप्त स्पष्टीकरणों के बाद भी मेरी एक शंका शेष रह गई है कि इन नियमों को अणुव्रत याने छोटे व्रत क्यों कहा जाता है ? ये भी यदि अणुव्रत हैं तो महाव्रत फिर क्या होंगे ? मैं तो सोचता हूँ आज के जन-जीवन में यह महान् से भी महान् नियम है।”

इसी विषय पर व्यवसाय-मंत्री श्री प्रकाश ने एक पत्र* में लिखा था—“मानवीय प्रकृति सीमा को ध्यान में रखना सबसे अच्छा है। मैं विश्वास करता हूँ कि आपकी प्रतिज्ञाएँ इस बात को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं। यदि हम ऐसी कठिन शपथ लें, जिसका पालन करना मानव की पहुँच के बाहर है तो हमें हर तरह के खतरों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जीवन में हम जो चाहते हैं वह है संयम, नियमितता एवं अनुशासन, न कि सर्व निषेध या अत्यधिक कठोर वैराग्य। हम जानते हैं कि कितने ही यत्न इस कारण नष्ट हुए कि उन्होंने ऐसी शपथ निर्धारित की, जिनका पालन करना साधारण मनुष्य के वश के बाहर की बात थी। मध्य मार्ग का अनुसरण करना और इस तरह भले-बुरे के बीच संतुलन कायम रखना सर्वोत्तम है।”

* ता० ४—५—४६

इसी तरह किसी प्रकार और भी अनेक निवेदन आये। इधर अणुव्रती बनने के विषय में भी मानसिक धरातल को इतना ऊँचा उठाने के लिए बहुत ही कम व्यक्ति साहस कर रहे थे। उस पर भी नियमों को सरल कर देने की बात आचार्यवर को मान्य नहीं थी।

अणुव्रत प्रचार के लिए आचार्यवर ने उपयुक्त ग्यारह नियमों का एक नया ही मार्ग ढूँढ़ निकाला—यह ग्यारह सूत्री कार्यक्रम पूर्ण अणुव्रती की मंजिल तक पहुंचने के लिए सोपान रूप है। अणुव्रत दिशा में बढ़ने के विषय में यह प्रथम चरण-विन्यास भी कहा जा सकता है। उक्त अर्थ में 'अणुव्रती आंदोलन' नाम भी सार्थक एवं समुचित है।

उक्त आन्दोलन का प्रारम्भ सम्वत् २००७ मिंगसर में सिंसाय (पंजाब) से हुआ। आचार्यवरके शिष्य साधुजन राजस्थान, मध्य भारत, पंजाब, सौराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में खूब तेजी से प्रचार कर रहे हैं। विगत एक वर्ष में सहस्रों व्यक्ति उक्त ग्यारह नियमों को आजीवन जीवन में उतारने के लिए शपथ ले चुके हैं। इस आन्दोलन का संक्षिप्त विधान यह है—

(१) आन्दोलनके सदस्योंको अणुव्रतियोंके साथ प्रति वर्ष एक अहिंसा दिवस मनाना होगा।

(२) आन्दोलनकी गतिविधिपर विचार-विमर्श तथा उसके प्रचारके लिए प्रतिमास स्थानीय सदस्योंका एक सम्मेलन होगा।

(३) प्रत्येक सदस्यको प्रतिवर्ष कमसे कम २५ व्यक्तियोंको आन्दोलन के सदस्य बनानेका प्रयत्न करना होगा।

उक्त विधानका तात्पर्य है कि नैतिकताके प्रसारके लिए नैतिक पुरुषों का एक संगठन बने जिससे उनके जीवनमें नैतिक बल जागृत होता रहे और बुराइयोंके सामने न झुकना पड़े।

आलोचनाके पथपर अणुव्रती-संघ

‘अणुव्रती-संघ’ नैतिक उत्थानका एक जागरूक प्रयत्न है। देश-विदेशके विभिन्न विचारकोंने इसे किस दृष्टिसे देखा है यह नीचे दिये गये विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंके समालोचना-पूर्ण उद्धरणोंसे अवगत करें।

हरिजन सेवक २० मई, १९५० सम्पादकीय :—

“जैनोंका तेरापंथी नामक सम्प्रदाय है। कहा जाता है कि जैन सिद्धान्तोंका अर्थ करनेमें उसका रुख उग्र है। उसके अनुयायियोंकी संख्या कुछ लाख है और उनमेंसे ज्यादातर राजस्थानके वैश्य हैं।

“आजकल उसके प्रभावशाली आचार्य श्री तुलसीजी हैं, आज व्यापारमें नैतिकताका जो हाल हो रहा है, उसमें सबसे ज्यादा हाथ व्यापारी समाजका है, इसलिये आचार्य श्री तुलसी कुछ दिनोंसे इस पतनके खिलाफ सामान्यतः सब लोगोंकी ओर खासकर अपने सम्प्रदाय के अनुयायियोंकी विवेक-बुद्धि जगानेमें लगे हुए हैं।

“जैन धर्मके सिद्धान्तोंकी विशुद्ध कल्पनाके अनुसार तो उस मार्गके राहीको सांसारिक जीवनका पूरा त्याग करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। लेकिन, चूँकि अधिकांश लोगोंके लिये ऐसा करना सम्भव नहीं है इसलिये पंथमें साधारण लोगोंको भी जगह देनेके विचारसे ‘अणुव्रत’ नामकी प्रथा जारी की गई है। अणुव्रतका अर्थ है, प्रत्येक व्रतका अणु लेकर सब व्रतोंका क्रमशः बढ़ता हुआ पालन। उदाहरणके लिये कोई आदमी जो अहिंसा और अपरिग्रहमें विश्वास तो रखता है, लेकिन उनके अनुसार चलनेकी ताकत अपनेमें नहीं पाता, इस पद्धतिका आश्रय लेकर किसी विशेष हिंसासे दूर रहने या एक हृदके बाहर और किसी खास ढंगसे संग्रह न करनेका संकल्प करेगा और धीरे-धीरे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ेगा। ऐसे व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। किसी समय इस प्रथाका जैनोंमें बड़ा प्रचार था।

“आचार्य तुलसीने किरसे इस प्रथाका प्रचार करनेके लिये एक अणुव्रती संघ नामकी संस्था शुरू की है। इस संघमें सबका प्रवेश हो सकता है, जाति, धर्म, रंग, स्त्री, पुरुष आदिका कोई विचार नहीं किया जाता। इस संघने अपने सदस्योंके लिये सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि नाम देकर कुछ विभाग बनाये हैं और उनमें हरेकके अणुव्रत बताये हैं। कुछ नियम तो इतने प्रत्यक्ष हैं कि हरेकको मानने चाहिये। कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें और ज्यादा कसना चाहिये। लेकिन, सच तो यह है कि युद्धके बाद दुनियामें मानवताका इतना पतन हो गया है कि वह समाजके प्रति अपने मामूली कर्तव्यको भी नहीं निवाह रहा है। इसलिये यदि यहाँ उनकी एक-एक कर गिनती की गई है, तो अच्छा ही है।

“यद्यपि यह संघ सब धर्मोंके मानने वालोंके लिये खुला है और अहिंसाके सिवाय बाकी सब व्रतोंके नियम उपनियम साम्प्रदायिकतासे मुक्त सामाजिक कर्तव्योंपर निगाह रखकर बनाये गये हैं, लेकिन अहिंसाके नियमोंपर पंथके दृष्टिकोणकी पूरी छाप है। उदाहरणके लिये—शुद्ध शाकाहार, वह चाहे कितना ही बांछनीय हो, भारत सहित मानव समाजकी हालत और रचनाको देखते हुए, मांस-मछली-अण्डे आदिसे पूरा परहेज करने और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योगोंसे बचे रहनेका व्रत जैनों और वैष्णवोंकी एक छोटी-सी संख्या ही ले सकती है। यही बात रेशम और रेशमके उद्योगके लिये भी लागू है। (यह देखकर कौतुहल होता है कि मोती और मोतियोंके व्यापारका उल्लेख नहीं किया गया है, यद्यपि उनमें भी उतनी ही हत्या होती है, जितनी कि रेशममें, हालांकि जैनोंमें यह व्यापार काफी फैला हुआ है)।

“लेकिन यह छोटी-मोटी खामियाँ छोड़कर इतना तो कहना ही चाहिये कि सिद्धांत और नियमके प्रति लापरवाह आजके रवैयेके खिलाफ लोगोंका विवेक जगानेकी यह कोशिश प्रशंसनीय है। संघका एक सम्मेलन मईके पहले हफ्तेमें दिल्लीमें हुआ था और खबर है कि लगभग

५०० व्यापारियोंने संघके नियमोंमें बताये हुये नियम लिये। मैं उम्मीद करता हूँ कि व्रती जन अक्षर और भाव दोनोंको सही अर्थमें पूरी-पूरी तरह पाएँगे और पूरे समाजका नैतिक स्तर उठानेके काममें साधक होंगे।”

हिन्दी दैनिक ‘हिन्दुस्तान’ दिल्ली (सम्पादकीय) —

“६४० अहिंसक ‘सैनिक’ देशमें पैदल गांव-गांवमें घूमकर अहिंसा धर्मका प्रचार करते हुए जनताके नैतिक धरातलको ऊँचा उठानेके प्रयत्न में संलग्न हैं। ये ‘सैनिक’ जैन ‘तेरापंथी’ संस्थाके साधु और साध्वियां हैं, जो कि ‘समाजसे थोड़ा लेने और अधिक देने’का व्रत लेकर जन-साधारणमें मानव-धर्मका प्रचार करते घूम रहे हैं।

“तेरापंथी सम्प्रदायके नेता आचार्य श्री तुलसीने आज सायंकाल पत्र-प्रतिनिधियोंके सामने उक्त सूचना देते हुए यह बताया कि जनताका नैतिक उत्थान करनेके उद्देश्यसे गत वर्षसे ‘अणुव्रती-संघ’के नामसे एक संस्था स्थापित है। इस संस्थाके मुख्य उद्देश्य ये हैं :—

(क) जाति, वर्ण, देश और धर्मका भेदभाव न रखते हुए मानव मात्रको संबन्ध-पथकी ओर आकृष्ट करना।

(ख) मनुष्यको अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि तत्त्वोंकी उपासनाका व्रती बनाना।

(ग) आध्यात्मिकताके प्रचार द्वारा गृहस्थ जीवनके नैतिक स्तरको ऊँचा उठाना।

(घ) अहिंसाके प्रचार द्वारा विश्व-मैत्री तथा विश्व-शान्तिका प्रसार करना।”

“हिन्दुस्तान टाइम्स” दिल्ली :—

“चमत्कारका युग अभी समाप्त नहीं हुआ है। दिल्लीमें भी हमें चारों ओर फैले हुए अन्धकारमें प्रभातकी एक किरण दीख पड़ी है। जब कि सैकड़ों पापी एक ही सबेरेमें धर्मात्मा बन जाते हैं, तब हमें

अपने निराशावादको दूर करके सत्ययुगके प्रगट होनेपर विश्वास करना ही पड़ता है ।

“इतिहासमें ऐसे उदाहरण तो मिलते हैं, जब कि एक या दूसरे पाप में फंसे हुए स्त्री या पुरुष वर्षोंके बाद भी निश्चयसे प्रायश्चित्त करके पीठ मोड़कर उधरसे हट गए । उन्होंने वैसा व्यक्तिगत रूपसे किया है । किसी संस्था या समाजके सदस्यके रूपमें नहीं । जीवनकी पवित्रताके लिये हुई यह सामूहिक जागृति एक घटना है, जो कदाचित् ही देखनेमें आती है ।

“जब शराबी भी सामूहिक रूपमें शराबका परित्याग करते हैं, जब डाकू भी इकट्ठे होकर सभ्य नागरिक बननेका निश्चय करते हैं और अनुचित रूपसे कमाये गये पैसेपर फलने फूलनेवाले व्यापारी एकत्रित होकर सचाईसे जीवन बितानेका आन्दोलन शुरू करते हैं, तब कौन उनसे प्रभावित न होगा ? वर्षमें सारे ही दिन तो ऐसे नहीं होते, जिनमें सच्चाई और भलाईको जमा करके सारी दुनियाके लिए उनका प्रदर्शन किया जाता है ।

“इसलिये नैतिक सुधारके लिए जो भी सामूहिक प्रयत्न किया जाता है, उसपर जनताका ध्यान जाना ही चाहिए और उसकी प्रशंसा भी की जानी चाहिये । गत रविवारको जिन ६०० व्यक्तियोंने भविष्यमें कालाबाजार या चोरबाजार न करनेकी गम्भीर प्रतिज्ञा ग्रहण की है और अपने जीवनकी पुस्तकमें जिन्होंने एक नया अध्याय जोड़ा है, ये केवल ग्राहकोंकी ही धन्यवादके अधिकारी नहीं हैं, किन्तु समस्त नागरिकों का धन्यवाद उन्हें मिलना चाहिये । उन्होंने यह सत्प्रतिज्ञा आचार्य तुलसीके सामने अणुव्रती संघके पहले वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर ग्रहणकी थी । इस संघकी स्थापना मानव-जीवनको-समस्त बुराइयोंसे शुद्ध करनेके लिये की गई है । सभी तरहकी बुराइयोंपर विजय पानेका यह सम्मिलित या सामूहिक आन्दोलन शुरू किया गया है, उसकी गम्भीरताका पता तो इस विस्मयजनक तथ्यसे लगता है कि आचार्य

तुलसी, जो कि इस संगठन या आन्दोलनके दिमाग हैं, राजपुतानाके रेतीले मैदानोंको पैदल पार करके दिल्लीकी पक्की सड़कोंपर आये हैं, केवल इस उद्देश्यसे कि वे संघके ऊँचे आदर्शों व सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहते हैं।”

‘हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड’ कलकत्ता, २ मई १९५० सम्पादकीय :—

“लगभग ६०० लखपतियों और करोड़पतियोंने, जो अधिकतर मारवाड़ी हैं, कहा जाता है कि यह प्रतिज्ञा कर ली है कि चोर-बाजारी-खाद्य पदार्थोंमें मिलावट और मिथ्या आचार आदिका अनैतिक व्यवहार अपने कारबारमें नहीं करेंगे। इस देशमें व्यापार व्यवसायमें मिथ्या आचार जोरोंपर है और यह भय है कि कहीं उससे समाजके जीवनका सारा ही नैतिक ढांचा नष्ट न हो जाये। इसलिये कुछ व्यापारियोंका यह आन्दोलन कि वे व्यापार-व्यवसायमें मिथ्या आचार न करेंगे, देशमें स्वस्थ व्यापार व्यवसायको जन्म दे सकेगा। इस दिशामें अणुव्रती संघके आचार्य तुलसीने जो पहलकी है ; उसके लिये वे बधाईके अधिकारी हैं।”

‘आनन्दबाजार पत्रिका’ कलकत्ताका ‘नूतन सत्ययुग’ नामका लेख इस प्रकार है :—

“तो क्या कलियुगका अवसान हो गया है ? सत्ययुग क्या प्रगट होनेको है। नई दिल्लीका ३० अप्रैलका एक समाचार है कि मारवाड़ी समाजके कितने ही लखपति और करोड़पति लोगोंने यह प्रतिज्ञा की है कि वे कभी चोरबाजार नहीं करेंगे। दो चार ही नहीं ; बल्कि ६०० लखपति करोड़पतियोंने यह वचन दिया है कि वे किसी भी प्रकारका चोरबाजार नहीं करेंगे। इसका एक इतिहास है, प्रयोजन है और इसके प्रेरक हैं आचार्य श्री तुलसी, जिन्होंने मानव जातिकी समस्त बुराईयोंको दूर करनेके लिये एक आन्दोलन प्रारम्भ किया है। उसीके समर्थनमें यह प्रतिज्ञा की गई है।

“मानव जातिके अकल्याणमें दुर्नीति और चोरबाजारीका जो

दायित्व है उसको अन्तमें ६०० लखपति-करोड़पतियोंने प्रगटमें स्वीकार किया। ६०० लखपति-करोड़पतियोंका नाम भी प्रगट हो गया होता, तो ठीक होता। चोरबाजार नहीं करेंगे, झूठे राशनकार्ड नहीं बनावेंगे, जुआ नहीं खेलेंगे, किसीकी जमीन या मकान, सोना-चान्दी, भोजन-सामग्री, घी-तैल-आटा-मैदा तथा दूधकी बिक्रीमें कम अधिक नहीं करेंगे और कोई मिथ्या व्यवहार नहीं करेंगे। इन्होंने कभी चोरबाजार किया था कि नहीं, कभी मिलावटकी थी कि नहीं, कभी मिथ्या व्यवहार किया था कि नहीं, यह हमें मालूम नहीं। इन प्रतिज्ञाओं में ऐसा कुछ लिखा नहीं गया है। बड़े-बड़े ही क्यों, साधारण व्यापारियोंमें भी ये बुराइयाँ फैली हुई हैं। चोरबाजार और मिलावट देशव्यापी बुराइयाँ बन गई हैं। छोटे व्यापारी यह कहेंगे कि पहले हमें भी लखपति करोड़पति बन लेने दो, तब हम भी मानवजातिके सुधारके लिये प्रायश्चित्त कर लेंगे।

“चोरबाजार करेंगे नहीं, मिलावट करेंगे नहीं, यह सब संकल्प बहुत अच्छे हैं; पर उनको व्यवहारमें लाना होगा और हृदयका परिवर्तन भी करना होगा। उसके लिये पहले पापकी स्वीकृति आवश्यक है। उसीको कहते हैं प्रायश्चित्त। मनुष्य कितना भी पापी और चोरबाजार करनेवाला क्यों न हो, जीवनके अंतिम भागमें, विशेषकर विवेकके जगनेपर और प्रायश्चित्त होनेपर उसके चरित्रकी शुद्धि हो जाती है। सरदार पटेलने दिल्ली सम्मेलितके सम्बन्धमें संदिग्ध लोगोंको मनुष्यके भीतर विद्यमान मनुष्यतापर विश्वास करनेके लिये कलकत्ताके व्याख्यान में उपदेश दिया था, ‘आदमीने पहले कुछ भी क्यों न किया हो, वह मृत्यु शय्यापर भी प्रायश्चित्त कर सकता है; इसपर हमें विश्वास रखना चाहिये।’

“अभी सेठ रामकृष्ण डालमियांने भी एक विज्ञप्ति प्रकाशितकी है। उसका सारांश यह है कि १९२० से १९३० तक प्रायः बीस वर्षतक युवा अवस्थामें मैं प्रसिद्ध सटोरिया रहा हूँ। परिस्थितिबश अनेक बार

पावनेदारोंका मैं पूरा रुपया चुका न सका। लिखा-पढ़ी न होनेसे कानून से उसका देना जरूरी न होता था। उनमेंसे बहुतसे पावनेदार अब जीवित नहीं हैं। यह सब याद करके मेरा हृदय भार महसूस करता है। उस भारको हलका करनेके लिये शरणार्थियोंकी सहायता करनेके लिये मैं ५ लाख रुपये दान कर रहा हूं। यह दान प्रायश्चित्त स्वरूप है। मैं इस कामके लिये गठित कमेटीको प्रतिमास २५ हजार रुपया दूंगा। अपने पावनेदारोंकी ओरसे मैं यह दे रहा हूं। शरणार्थियोंको जो सुख अनुभव होगा, उससे पावनेदारोंकी आत्माको शांति मिलेगी।

“पहिले व्यापारमें जो भी त्रुटियां हुई हैं उनके लिये सार्वजनिक रूपसे प्रायश्चित्त करना और पैसा दे देना यह पापके विनाशका प्रधान उपाय है। दिल्लीमें ६०० लखपति व करोड़पति मारवाड़ियोंने जो प्रतिज्ञायें की हैं, उनमें पूर्वकृत पापको स्वीकार नहीं किया गया है। पाप नहीं किया था, तो प्रतिज्ञा लेनेकी भी आवश्यकता नहीं थी। तब उसका मूल्य क्या है ?

“अवश्य ही यह सत्य नहीं है कि दिल्लीमें जिन मारवाड़ियोंने ये प्रतिज्ञायें ली हैं उनके अतिरिक्त देशमें और को इनके लेनेकी आवश्यकता नहीं है। चोरबाजार और मिलावट करनेवाले मारवाड़ियोंके अलावा और भी तो हैं। यह ठीक है कि व्यापारके क्षेत्रमें मारवाड़ियोंका प्रभाव विशेष है। उनमें यदि ६०० लखपति करोड़पति भी चोरबाजार या मिलावट नहीं करेंगे तो भी व्यापार व्यवसायमें एक सत्ययुग आ जायेगा।

“हम आचार्य तुलसी महाराजसे सविनय अनुरोध करना चाहते हैं कि वे कलकत्ता नगरीमें आनेकी कृपा करें। यहांके हजारों ग्वालोंको प्रतिज्ञा ग्रहण कराये कि वे दूधमें पानी नहीं मिलायेंगे। बनावटी दूधमें मसाला मिलाकर उसको सच्चा दूध बनानेकी कोशिश नहीं करेंगे। एक वर्षके लिये यह प्रतिज्ञा दिलाकर यदि वास्तवमें ही उसको निभाया जायेगा तो उससे मानवजातिके लाखों लोगोंके तन, मन तथा आत्माका

विशेष कल्याण हो सकेगा। सभी लखपति या करोड़पति नहीं हैं; हजारों कमानेवालोंका भी समाजमें कुछ कम स्थान नहीं है। इसलिये सरसोंके तैलमें सियालकाराका तैल मिलाने, घीमें चर्बी मिला और कम तौलनेकी समस्या इतनी विकट है कि कलकत्ताके बाजारमें एक सेर मच्छलीकी कीमत अढ़ा करने पर भी घरमें पूरी एक सेर लै जानेका प्रसंग कदाचित ही कभी आता होगा। ऐसी कितनी ही समस्याओंने हमारे जीवनको बिगाड़ कर संकटमय बना दिया है।

“महात्माजी प्रेम, सहृदयता, अहिंसा, सत्य, धर्म आदिके उपदेशसे चोरबाजारी और मिलावटको दूर करनेमें सफल नहीं हो सके। आचार्य तुलसी महोदय मानवजातिकी बुराइयोंको दूर करनेके आन्दोलनमें सफल होकर यदि व्यवसायियोंको सत्य निष्ठ बना सकें, कांग्रेसी तथा गैर कांग्रेसी जन-साधारणमें और सरकारी कर्मचारियोंमें फैले हुये मिथ्याचार और दुर्नीतिको दूर करसकें तो महात्माजीके स्वप्नका राम-राज्य पूर्णरूपमें प्रगट हो जायेगा। दिल्लीमें लखपति करोड़पतियोंने आत्म-हत्या न करनेकी भी प्रतिज्ञा ली है। आत्महत्या महापाप तो है, परन्तु वे तो प्रतिज्ञा न लेने पर भी आत्महत्या नहीं करते,—ऐसा हमें विश्वास है।”

न्यूयार्क (अमरीका) के पत्र ‘टाईम’ १५ मई १९५० सम्पादकीय :—

“अन्य अनेक स्थानोंके कुछ व्यक्तियोंकी तरह एक पतला दुर्बल ठिगना भारतीय चमकती हुई आंखों वाला संसारकी वर्तमान स्थितिके प्रति अत्यन्त चिन्तित है। ३४ वर्षकी आयुका वह आचार्य तुलसी है, जो तेरापन्थी समाजका आचार्य है। यह समाज एक धार्मिक समुदाय है, जो अहिंसामें विश्वास रखता है। तुलसीरामजीने १९४६ में अणु-व्रती संघ कायम किया था। इसके सदस्य १४८ प्रतिज्ञायें लेते हैं, जो प्रति वर्ष दोहराई जाती हैं।

“गत सप्ताह संघने यह घोषणाकी है कि उसके सदस्योंकी संख्या ७५ से २५ हजार हो गई है। उनमें अनेक लखपति करोड़पति भी हैं।

संघके पण्डालमें तुलसीरामजीके अनेकों शिष्य लाल, पीली और नीली पगड़ी पहने हुए इकट्ठे हुए, जहाँ कि तुलसीरामजी एक ऊँचे मंचपर विराजमान थे, एक शिष्यने १४८ प्रतिज्ञायें पढ़ी। तुलसीरामजीने ऊँचे स्वरमें पूछा “क्या तुमको ये प्रतिज्ञायें स्वीकार हैं ?” जनताने उत्तर दिया—“हम सब उनसे सहमत हैं।”

“प्रतिज्ञाओंमें लिखा गया है कि घूस न लगे न देंगे ; भूठे राशन-कार्ड नहीं बनवायेंगे ; बिना टिकटके सफर नहीं करेंगे ; जाली हस्ताक्षर नहीं बनायेंगे ; आत्महत्या नहीं करेंगे ; दूधमें पानी और आटेमें किसी और चूर्ण आदिकी मिलावट नहीं करेंगे ; किसी लड़कीके विवाहके सम्बन्धमें भूठ न बोलेंगे, अन्धी लड़कीको सूझती नहीं बतायेंगे; आदि।

“जब कि समस्त भारतको ये प्रतिज्ञायें दिलवा चुकेंगे, तब तुलसीरामजीकी शेष संसारको भी इन प्रतिज्ञाओंको दिलवानेकी योजना है।”

Manchester Guardian, 31-10-50.

“For example, a Jain religious Leader Acharya Sri Tulsi, has arisen with a mission to the black marketers. He has organised his disciples into 120 parties who will walk through the Indian cities and bring business men into a better frame of mind. Among other pledges they are required to promise not to cheat widows or to travel on the Railways without tickets.”

The Jain Gazette, August 1950

“The preliminary discipline for a Jaina, Sravak, commonly called Suraogi is the adoption of the five Anuvrats, the vows of non-violence, non-falsehood, non-

appropriation of goods of another, non-hoarding of worldly objects, and sexual purity in thought, word and act. He shall observe for life all the five vows himself, he will not abet their transgression, nor will he approve of their transgression by another.

“This practical adoption of Jain discipline in daily conduct—has almost been ignored. In practice, at the present time distinctive characteristics of a Jain consist of mere outward forms or external observances which entail no mental effort, such as drinking water which has been strained through cloth, refraining from taking meals after sun-set, abjuring root-vegetables or vegetables which grow under-ground, abstention from taking green vegetables on certain days of the week, performing worship in a temple, saying prayers, reading or hearing the sacred scriptures and telling the beads which are usually 108 in number.

“We feel genuinely gratified to learn that Acharya Tulsiramji Swami, the 9th Pandit of the Svetamber Terapanthi community, has, for the first time during the last 6 or 7 decades, inaugurated a session of the Anuvrati Sangh in Delhi in May last.

“Acharya Tulsiramji has thought out and prescribed rules in consonance with the present social and economic circumstances of the country. The vows recommended by Acharya Maharaj tantamount to a practical

observance of the five vows laid down in the Jain scriptures. As a result of the sermons of Acharya Tulsiramji 621 millionaires and multi-millionaires, mostly of the Marwari community adopted a solemn vow abjuring the practices of blackmarketing, adulteration in articles of food, counterfeiting coins, obtaining bogus ration cards, publishing false advertisements, accepting or offering bribes, travelling without tickets, gambling, attempting suicide, using man-drawn vehicles, making false statement in the course of sale or purchase of land, house, beasts, birds, gold, silver, grain, ghee, oil, flour, milk etc, signing false documents. They also vowed not to marry beyond the age of 45. These vows have provisionally been adopted for the period of one year.

“We hope that the vows will be renewed from year to year and finally adopted for life, and further the circle of the members of the Anuvrati Sangh will widen from time to time and grow in magnitude so as to become an All India organisation, irrespective of caste consideration. An Anuvrati could, Acharya Tulsiramji observed, redeem the world from its vices, and raise Jainism to a very high pedestal in public estimation in all countries.

“Hoarding, cornering and black-marketing will disappear. A citizen of India will in the words of saint Tukaram say “my wealth is not so small as could be kept in a box or a house. It is therefore kept in all houses. My money and my food grains are spread over the entire world.”

‘श्रमण’ जून १९५० सम्पादकीय :-

“मईके पहले सप्ताहमें समाचार पत्रोंमें एक उत्साह वर्षक और आशाजनक समाचार प्रकाशित हुआ था। हमें यह पढ़कर बहुत खुशी हुई कि भारतकी राजधानी दिल्लीमें श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदायके वर्तमान आचार्य श्रीतुलसीगणीजीके नेतृत्वमें अणुव्रती संघका एक अधिवेशन हुआ। उसमें ६०० से भी अधिक व्यापारियोंने अपने धर्मगुरु के सामने यह प्रतिज्ञा की कि वे चोरबाजारी नहीं करेंगे, रिश्वत नहीं लेंगे, जाली राशन कार्ड नहीं बनायेंगे। इसके अतिरिक्त भूठे विज्ञापन छपवाने, बिना टिकट रेल-यात्रा करने, जुवा खेलने, आदमी द्वारा चलाये गये रिक्शेपर बैठने, जाली हस्ताक्षर करने, व्यापारमें बेइमानी करने, तथा ४५ वर्षकी आयुके बाद विवाह करने आदिका भी त्याग किया गया। इन व्यापारियोंमें ज्यादातर संख्या करोड़पति और लखपति व्यापारियोंकी ही थी। वे इस बातको भली-भांति समझते थे कि उनमें से बहुतसे व्यक्तियोंने इन दिनों व्यापार कौशलके नामपर क्या-क्या न करने योग्य काम किये हैं। उनकी अन्तरात्मा नैतिक पतनसे तड़प उठी और आत्मामें विद्यमान स्वाभाविक सद्वृत्तिकी भावना जागृत हुई। इसके साथ-साथ उन्हें कंचन-कामिनीके स्पर्श तकके त्यागी और परमार्थ को ही स्वार्थ समझनेवाले एक जैनाचार्यकी प्रेरणा पानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। नतीजा हमारे सामने है।

“आज दुनियाके प्रायः सभी देशोंमें नैतिक आदर्शोंको तिलांजलि दे दी गई है। लोभ, रिश्वत, धोखेबाजी, स्वार्थ साधना, अविश्वास, एक दूसरेको लूटनेकी भावना, खोटे और भूठे नापतौल और लगभग हरेक चीजमें मिलावट आदि बुराइयोंका सब जगह बोल-बाला है। दूसरे देशोंमें परिस्थितिका सच्चा रूप क्या है, इस बारेमें न तो हम अधिकार पूर्वक कह सकते हैं और न अपनी वर्तमान दशाको देखते हुए इस बातका हक ही रखते हैं। जिन बुराइयों और अपराधोंके कारण हमारा अपना सरही लज्जावश झुका हुआ है उन्हें हम अपना मस्तक ऊँचा करके

दूसरी जगह देख भी कैसे सकते हैं ? भारतकी सोचनीय दशा हमारी आँखोंसे ओझल हो नहीं सकती। सामुदायिक या सामाजिक भावना का लोप हो गया है। खाने-पीनेकी कोई भी चीज शुद्ध नहीं मिलती। कांग्रेसके अध्यक्ष डा० पट्टाभिका कहना है कि हमारे देशमें अनाजकी जितनी कमी बताई जाती है, वह जाली राशन कार्डोंके रह हो जानेसे ही दूर हो जायेगी। तेल और घी में न मालूम किन २ पदार्थोंकी मिलावट कर गरीब और निर्बल जनताके स्वास्थ्यसे राक्षसी खिलवाड़ किया जा रहा है। जीरेके स्थानपर घास और बजरी दी जा रही है। बाहरके देशोंमें हमारा सम्मान गिर गया है। असली रूईकी जगह गीली रूई, मूंगफलीकी बोरियोंमें कंकर तथा काजूमें पत्थर मिलाकर हमने नैतिक पतनकी सीमाको पारकर दिया है, बिना टिकट यात्रा कर हम अपने ही राष्ट्रको लाखों रुपयेका नुकसान पहुंचा रहे हैं। ऊपरकी आमदनी और रिश्वतखोरीने इतना व्यापक रूप धारणकर लिया है कि आज कोई भी व्यक्ति बड़े २ नेताओं जैरे राजकर्मचारियोंको बदनामकर जनतामें यह विश्वास कर सकता है कि हमारे परखे हुए नेता भी इन प्रलोभनोंके जालमें फँसे हुए हैं। कभी जमाना था जब कुछ लोग युद्ध और प्रेमकी घटनाओंमें ही भूठ और कूटनीतिको क्षम्य समझते थे। अब व्यापार और बेईमानी आपसमें दूध पानीकी भाँति घुल-मिल गई हैं। उनका पृथक्करण कवियों द्वारा कल्पित कोई हंस भी कर सके या नहीं, इसमें सन्देह है। जबतक राज्यकी सत्ता अंग्रेजोंके हाथमें थी, हम अपनी बुराइयोंका सारा जिम्मा उनके माथे मढ़कर संतोषकर लेते थे। अपने ही दिलोंमें छिपी हुई आसुरी प्रवृत्तिकी ओर हमारा ध्यान ही न जाता था। अब हमारे राष्ट्रकी बागडोर हमारे ही हाथोंमें है। भीतर बैठे हुई आसुरी प्रवृत्ति सहसा नाच करने लग गई है, और कोई भी उस ओरसे अपनी आँखें मूंद नहीं सकता।

“ऐसी अवस्थामें यह आवश्यक था कि कुछ ऐसे नेता और प्रभावशाली व्यक्ति आगे आयें जो इन बुराइयोंको दूरकर जन-साधारणको

आशा और विश्वासकी प्रकाशमय किरणोंका दर्शन करा सकें। सरकार का कहना है कि उसके सामने ऐसी २ विकट समस्याएँ उपस्थित हैं जो राष्ट्रके अस्तित्वको ही खतरा पहुंचानेवाली हैं। वह उनमें उलझी हुई है। उनमें किस समस्याका संतोष-जनक हल हो पाया है, यह एक अलग प्रश्न है। हां मुझे यह तो मानना ही होगा कि सरकार कानून बनाकर भी तबतक उसे असली जामा नहीं पहना सकती जबतक जनताका हार्दिक सहयोग नहीं मिले। जनताके नैतिक स्तरको ऊँचा करनेका बीड़ा सरकारी क्षेत्रके बाहरके लोग भी उठा सकते हैं। हर्षका विषय है कि इस ओर सक्रिय कदम उठने लगा है। सर्वोदय समाजके संचालक प्रयत्न कर रहे हैं। केदारनाथजीके नेतृत्वमें व्यवहार-शुद्धि मण्डलकी स्थापना हुई। उनका यह कहना सर्वथा ठीक है “जब चोरबाजार वाले स्वार्थ सिद्धिके लिये संगठन कर सकते हैं तो सज्जन प्रकृतिके क्यों नहीं? कारण यही है कि ईमानदार बननेकी तीव्र भावना बहुत कम लोगोंमें है।” आचार्य श्री तुलसीगणिजीका सत्ययत्न भी इसी दिशाका सूचक है। एक सच्चा जैन कभी यह शिकायत नहीं करता कि जब जमानेकी हवा ही बिगड़ी हुई है तो वह अकेला क्या करे? जैन-धर्म व्यक्तिकी स्वतन्त्रता और व्यक्तिके सुधारमें पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि व्यक्तिके सुधारसे ही समाजका सुधार हो सकता है। जैन धर्मने निवृत्ति और संयमपर जो जोर दिया है उसका आशय भी यही है कि व्यक्ति दोषोंसे बचता हुआ अपनी आत्माको शुद्धकर सत्कार्योंमें प्रवृत्ति हो। दोष निवृत्तिसे सत्यप्रवृत्ति संभव नहीं। इस विषयमें श्रद्धेय पंडित सुखलालजीने (Pacifism and Jainism) में बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है।

“हमें पूरा विश्वास है कि जिन सद् गृहस्थोंने दिल्लीमें अपने सामाजिक व्यवहारको नैतिक दृष्टिसे शुद्ध बनानेकी प्रतिज्ञा की है, वे अपने कर्तव्यको पूरी तरह समझते हैं। वे जानते हैं कि जैन गृहस्थ जब अपने धर्मगुरुके सामने कोई नियम या पचक्खान लेता है तो

उसका क्या महत्व है। कोई भी जैन प्रतिज्ञा लेनेसे पहले हजार बार सोचेगा, आनेवाली कठिनाइयोंको समझेगा, मानव-हृदयकी कमजोरी और उसके उतार-चढ़ावका मनन करेगा, किन्तु प्रतिज्ञा लेकर, व्रत ग्रहण कर, नियमको अंगीकारकर उससे विचलित नहीं होगा। वह जानता है कि जैन श्रावकका सर्वप्रथम लक्षण आचार्य हेमचन्द्रजीके कथनानुसार “न्याय सम्पन्न विभवः” है। जबतक उसकी कमाई न्याय और सत्यकी आधार-शिलापर नहीं, वह अणुव्रतो या श्रावक कहलानेका अधिकारी नहीं। अतः वह अणुव्रत धारण करते समय आनेवाली जिम्मेवारीको निभानेके लिये पूरा प्रयत्नशील रहेगा। सच्चा श्रावक बनने के पहले वह भगवान महावीरके दश मुख्य उपासकोंकी जीवनीको अपने सामने आदर्श रूपमें रखेगा। हम जानते हैं कि विघ्न और बांधायें उन्हें लक्ष्यसे मुँह मोड़ लेनेकी प्रेरणा करेंगी। सांसारिक प्रलोभन चीन की दीवार बनकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोकेंगे परन्तु वे इन सबको पारकर ध्येयकी ओर बढ़ते जायेंगे। वे अपनी शक्तिका कम अनुमान न लगायें। डूबते हुए सूरजने एक दीपकसे पूछा था कि अब मेरे बाद दुनियामें उजाला कौन करेगा ? दीपकने नम्रता पूर्वक जबाब दिया—“जितना मुझसे बन सकेगा, मैं आपका काम करूँगा।” इसी दृष्टिसे हमें अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये।”

अणुव्रत दृष्टि शुद्धाशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	अशुद्ध	शुद्ध
लेखकीय (क १३ (ग) १ से ३		४।५	तुलना दोनों इस पुस्तक को .. ध्यान रखेंगे।	तुलना अधिकांशतः दोनों यह पैरा बिल्कुल उठा दें
२६	२०।२१		इसके साथ यह तो स्वाभाविक है ही कि	यह अंश उठा दें
२६	२२	६।७	मिलता रहे	मिले
२६	२३	५।६	होते रहें	बनें यह तो स्वाभाविक ही है
३८	६	७।८	की एक	की गृहस्थ एक
३८	१०	३।४।५	न करते हुए	नहीं कर सकता इसलिए
५५	२३	१	रोगों से	रोगों से भी
६४	११ वीं पंक्ति के बाद			यह भोजन असंयमको नियन्त्रित करनेवाले नियमों में से एक है।

